जन्तुओं का गृह-निर्माण

[विविध जन्तुओं, कीड़े-मकोड़ों, पक्षियों आदि द्वारा सन्तानोत्पादन या निवास के लिए गृह बनाने का वर्णन]

लेखक

जगपति चतुर्वेदी, सहा० सम्पादक 'विज्ञान'



कि ता ब म ह ल

इ ला हा बा द

प्रथम संस्करण, १९५५

सरल विज्ञान की उत्कृष्ट पुस्तकें

ले०—जगपति चतुर्वेदी, सहा० संपादक 'विज्ञान'

विलुप्त जन्तु
बिजली की लीला
समुद्री जीव-जन्तु
वनस्पति की कहानी
जीने के लिए
ज्वालामुखी
भूगर्भ विज्ञान
पेनिसिलिन की कहानी
वैज्ञानिक आविष्कार भाग १, २
परमाणु के चमत्कार
कोयले की कहानी
विलुप्त वनस्पति
तत्वों की खोज में
कीटाणुओं की कहानी
शल्य-विज्ञान की कहानी
अद्‌भुत जन्तु
विलक्षण जन्तु
आविष्कारकों की कहानी
शिकारी पक्षी
जलचर पक्षी
वन-वाटिका के पक्षी
वन-उपवन के पक्षी
उथले जल के पक्षी
हिंसक जन्तु
खुर वाले जानवर
स्तनपोषी जन्तु
जन्तु बिल कैसे बनाते हैं ?
जन्तुओं की बुद्धि
जन्तुओं का गृह-निर्माण
पक्षियों के घोंसले
विचित्र चींटे
तारा-मंडल की कहानी
कीटों की कहानी
सरीसृपों की कहानी
मछलियों की कहानी

प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद ।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७, जीरो रोड, इलाहाबाद ।

दो शब्द

आज से लगभग ३० वर्षों पूर्व सम्वत् १९८१ (१९२४ ई०) में 'विज्ञान परिषद' प्रयाग द्वारा प्रकाशित मासिक "विज्ञान" में कुछ लेख 'वूड' की एक पुस्तक के आधार पर जन्तुओं के गृह-निर्माण के सम्बन्ध में लिखने का मुझे अवसर मिला था। आज इतनी अवधि के पश्चात् पुस्तकों रूप में इस विषय का साहित्य पाठकों के सम्मुख रखने में मुझे अवश्य ही असीम आनन्द का अनुभव हो रहा है। "जन्तु बिल कैसे बनाते हैं?" तथा "पक्षियों के घोंसले" भी प्रेस में है। आशा है कि ये पुस्तकें पाठकों का विशेष मनोरंजन तथा कुछ ज्ञानवर्द्धन करने में योग प्रदान करेंगी।

जगपति चतुर्वेदी

विषय-सूची

		पृष्ठ
१. शरीर ही घर है	...	१
२. बेघरों का घर	...	५
३. गृह-निर्माण का प्रयत्न	...	१३
४. वर्तुलाकार गृह-निर्माण	...	३०
५. कलात्मक गृह-निर्माण	...	४४
६. कागज द्वारा गृह-निर्माण	...	५५
७. मिट्टी द्वारा गृह-निर्माण	...	६८
८. जंतुओं का घटाकार गृह-निर्माण	...	९९
९. कीटों के शाखावलंबी गृह	...	१०४
१०. संघबद्ध कीटों का गृह-निर्माण	...	१३४
११. विविध रूपी गृह-निर्माण	...	१४५

शरीर ही घर है

बहुत से जन्तुओं को गृहविहीन ही समझना चाहिए। कुछ ही ऐसे जन्तु हैं जो किसी प्रकार का बिल, घोंसला, कोटर आदि बनाते हैं, या दरार, कंदरा, कुञ्जों की ओट आदि में आश्रय लेते हैं। जो किसी प्रकार भी कुछ सहारा सा प्राप्त करते हैं उनकी बात छोड़ दें तो बिना किसी प्रश्रयस्थल के रहने वाले छोटे या बड़े जन्तुओं की संख्या एक, दो नहीं, असंख्य होगी। ऐसी स्थिति में जब हमें कुछ ऐसे जन्तु दिखाई पड़ते हैं जिनका शरीर ही गृह सा बना होता है तो प्रकृति की व्यवस्था पर विस्मय होता है।

शरीर ही गृह सा रखने वाले जन्तु कोई दूर के अपरिचित तथा विलक्षण जन्तु नहीं हैं। हम उनको साधारणतया देखते रहते हैं परन्तु उस ओर ध्यान नहीं जाता। इतना अवश्य है कि जल तथा पंक से दूर रहने वाले नगरवासियों को वे जन्तु सदेह दिखाई भले ही न पड़ें परन्तु उनके शरीररहित गृह हमारे घरों में सज्जित अवश्य पाए जा सकते हैं।

शंखध्वनि को हम अपने धार्मिक कृत्यों में स्थान देते हैं। प्राचीन समय में यह युद्ध-घोषणा का वाद्ययंत्र भी माना जाता रहा होगा किन्तु हम यह सोचने का अवसर नहीं पाते कि यह शंख है क्या वस्तु। यथार्थ में यह एक ऐसे समुद्री जन्तु का गृह है जिसमें से प्राणी का कोमल शरीर लुप्त हो चुका है और केवल यह बाहरी प्रकवच ही रह गया है।

शंख तो उस जन्तु का नाम था जो इस गृह में रहता था, परन्तु जीव तो निष्प्राण ही हो गया, उसके सारे कोमल अंग प्राणान्त होने के बाद ही सूखते गए। यह कड़ी वस्तु तो उस बेचारे जीव ने अपने शरीर की जान-बूझकर रक्षा करने के लिए कुछ बाह्य त्वचा-ग्रन्थियों से प्राकृतिक रूप में ही रासायनिक द्रव्य स्रवित या निःसृत कर जमाकर बनाई थी। उसको इसका आकार-प्रकार सोचने के लिए बुद्धि भी न लगानी पड़ी होगी। वह उसकी केवल अंतःवृत्ति द्वारा प्राकृतिक विधान से उत्पन्न वस्तु थी। हम उसे कोई पृथक वस्तु ही आज समझ बैठे हैं, परन्तु समुद्र के निकट रहने वाले मनुष्य उन सजीव शंख जन्तुओं को अपने इस गृह में ही रहकर चलते अथवा थोड़े समय में ही छोटे रूप से अपने शरीर का बड़ा आकार कर इस बाह्य प्रकवच रूप के गृह या आवरण को भी वृद्धिशील रखते देखते होंगे। छोटे-मोटे ताल-तलैया के निकट तक ही अपनी पहुँच रखने वाले व्यक्ति भी शंख के नमूने के क्षुद्र-काय पदार्थ कड़ी खोल रूप में सजीव प्राणियों युक्त देख सकते हैं। नदी-तालाबों में हमें घोंघे, शम्बुक, सीप आदि को सजीव रूप में देखने का अवसर मिल सकता है। उन जन्तुओं के मर जाने पर ये कड़ी खोल रूप के पदार्थ या प्रकवच तटों पर मारे-मारे फिरते हैं और बेमोल प्राप्त किए जा सकते हैं। कौड़ी भी इसी तरह का किसी प्राणी का प्रकवच होता है।

मनुष्य का बनाया घर एक बार जिस आकार का बन जाता है उसे तोड़े बिना घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। साँप या अन्य जन्तु अपने शरीर की ऊपरी त्वचा बाहर फेंककर शरीर का कुछ परिष्कार सा करते हैं। वह केचुल उनकी आयु के अनुसार छोटी या बड़ी होती है। कदाचित उसकी वृद्धि नहीं हो सकती, इसी कारण जन्तु एक केचुल को उतार फेंकते हैं और नीचे की त्वचा को अपनी

बढ़ती आयु के अनुरूप शरीर का आवेष्ठन बनने देते हैं। परन्तु प्रकवचीय या घोंघा, शंबुक, शंख आदि सरीखे जन्तु एक तो बड़ी कड़ी खोल रूप की त्वचा या आवेष्ठन रखते हैं, दूसरे बढ़ती आयु के अनुसार वे प्रकवच बढ़ते भी जाते हैं। ये सजीव प्राणी के सजीव अंग ही होते हैं। वार्षिक केचुल उतारने रूप में उसे उतार फेंकने की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकवच की कठोरता का ही यह परिणाम होता है कि अनेक शत्रुओं से उनके कोमल अंगों वाले प्राणी की रक्षा होती है। इन प्रकवचों की बाढ़ उसी समय रुकती है जब प्राणी के प्राण-पखेरू उड़ गए होते हैं। भीतर के सारे कोमल शरीर की जीवनक्रिया समाप्त हो चुकी रहती है। अतएव प्राण रहते समय तक ये प्रकवच गृह रूप में उन प्राणियों के कोमलांगी शरीर की रक्षा करने का कर्तव्य पूर्ण करते रहते हैं।

प्रकवचीय कोमलांगी जन्तुओं के बाह्य आवरण या प्रकवच की रचना कठोर चूने के पदार्थ से होती है। यह चूनम् द्रव्य उनके शरीर के ऊपरी तल या त्वचा पर की विशेष ग्रन्थियों द्वारा उसी प्रकार उत्पन्न होता है जैसे हमारे या अन्य रीढ़धारी जन्तुओं के अस्थि कंकाल की रचना शरीर के भीतरी कोषों द्वारा होती है। तनिक भी खटका होने पर कोमलांगी जीव अपने प्रकवच रूप के चलते-फिरते दुर्ग में कोमल अंगों को समेट लेते हैं।

कोये या तन्तु-आवेष्ठन रूप का अस्थायी गृह कीटों या पतिंगों के वे शिशु निर्मित करते हैं जो उसके अन्दर निराहार ही कुछ काल तक निद्रित पड़े रहकर कायापलट करते हैं और उस खोल या केचुल को उतारकर यथार्थ कीट या पतिंगों का रूप धारण करते हैं।

किन्तु इन सब स्थायी या अस्थायी गृह-निर्माणों को उन जन्तुओं

का कौशल नहीं कहा जा सकता। उन्हें ये कार्य न सीखने पड़ते हैं और न उनकी योजना करनी पड़ती है। वे प्राकृतिक प्रेरणा से ही उस जाति के सभी जन्तुओं द्वारा सम्पादित होते हैं। उनके निर्माण का सब कुछ श्रेय प्रकृति या उनकी अंतःवृत्ति को ही दिया जा सकता है जिसके कारण वंश-परंपरा से ऐसे गृह सदा से निर्मित होते आते रहते हैं।



बेघरों का घर

जिनको प्रकृति ने शरीर को प्रकवचीय कोमलांगी सरीखा कठोर आवेष्ठन युक्त बनाने की क्षमता नहीं दी है और जो अपने उद्यम तथा कौशल से कोई गृह भी बना सकने में समर्थ नहीं हो सकते, उनको यदि बेघर का जंतु कहा जाय तो अनुचित नहीं। अतएव बेघरों के घर या गृहहीनों के गृह की बात उठने पर हमें यह अवश्य ही अनुमान हो सकता है कि ऐसे जन्तुओं में कुछ अन्यों का निर्मित गृह खाली पाकर या खाली कराकर अपने उपयोग में लाते होंगे। प्रकृति में ऐसे कुछ जन्तु पाए जाते हैं।

योगी केकड़े की कथा बहुत ही प्रसिद्ध है। यह दूसरे जन्तुओं के मृत होने पर उसके त्यक्त कठोर आवरण या प्रकवचीय गृह का उपयोग करने में बहुत कुशल है। घोंघे समान जन्तु प्रकवचीय गृह या आवरण रखते हैं परन्तु उनका भीतरी अंग कोमल ही होता है। वे भाल या सिर को प्रकवच से बाहर निकालकर भूमि पर टेकते हैं और उसे ही आगे बढ़ाकर प्रकवच के साथ सारा शरीर आगे घसीट ले जाते हैं। यह मन्द गति अवश्य होती है, परन्तु जहाँ रक्षा के लिए आवरण का इतना विशेष प्रबंध उन्होंने कर रक्खा है वहाँ उनके अन्य अङ्ग प्रकवच के भीतर रक्षित और दुर्बल होने से उन्हें चलने में अधिक सहायता नहीं कर सकते। सिर के बल चलने की इस विवशता के कारण ही इन जन्तुओं को भाल-पदी या शीर्षपदी कहते हैं। उनका सिर ही पैर का काम करता है

इसलिए यह नाम उपयुक्त है। शीर्षगामी भी कहना अनुचित नहीं। योगी केकड़ा जीवनकाल में चलने-फिरने से दूभर किन्तु प्रबल रक्षक आवरण रखने वाले जन्तुओं की मृत्यु हो जाने पर उनके खोखले प्रकवच ही से अपना शरीर रक्षित करने का प्रयत्न करता है। केकड़ों में कुछ कड़ी खोल शरीर के ऊपर प्रायः सभी जातियों में बनी होती है किन्तु योगी केकड़े की जाति के शरीर पर कदाचित् पूर्व काल में कभी अन्य साधारण सजातियों की भाँति कुछ कड़ी खोल बनती रही हो परन्तु बहुत दिनों से इसकी सभी पीढ़ियाँ शीर्ष पादी जन्तुओं, घोंघे आदि के त्यक्त प्रकवच को ही प्रयुक्त करती आई हैं, इस कारण कदाचित उनको प्रकृति द्वारा कड़ी खोल प्राप्त होने की सुविधा छीन सी ली गई है। तथ्य चाहे जो हो, परन्तु उपयोग न होने से विकासवाद के उदाहरणों द्वारा जन्तुओं के कुछ अंग दुर्बल या लुप्त होते जाना निर्विवाद बात मानी जाती है।

योगी केकड़ा अपने उदर को खाली प्रकवच में छिपाने का अभ्यस्त है। इसलिए उस पर कड़ी खोल नहीं उत्पन्न होती, परन्तु उसके सिर तथा पैरों के प्रकवच से बाहर साधारण रूप के ही होते हैं। इस कारण उसे अपने कोमल अंग की रक्षा का साधन भी प्राप्त हो जाता है तथा चलने-फिरने का भी सुभीता रहता है। एक भारी कठिनाई अवश्य होती है। घोंघों की प्राकृतिक खोल या प्रकवच का आकार उनके मर चुकने पर निर्धारित या अपरिवर्तनीय होता है। अतएव इस उधार लिए गृह को केकड़ा घटा-बढ़ा सकने में असमर्थ होता है। पहले वह अपना शरीर छोटा होने से छोटा प्रकवच ही ग्रहण किए होता है। शरीर की वृद्धि होने पर उसे बदलना पड़ता है।

योगी केकड़ा की यह विवशता होती है। प्रकवच का मूल कोमलांगी जीव तो अपने शरीर के बाह्य अंग रूप में ही इसे निर्मित

करता है। इसलिए उसके शरीर की वृद्धि होते जाने से स्वभावतः प्रकवच भी बढ़ता है या उसके अग्रभाग नए तथा चौड़े बनकर उसके बढ़ते आकार को प्रश्रय देते हैं, परन्तु जिस समय प्रकवच का प्रयोग योगी केकड़े द्वारा होता है, उस समय वह निष्प्राण कठोर आवरण मात्र ही रहता है, इसलिए उसमें वृद्धि नहीं हो सकती। इसी कारण योगी केकड़ा एक प्रकवच छोड़कर उससे अपेक्षाकृत बड़ा प्रकवच ढूँढ़कर अपना आश्रय-स्थल बनाता है। ऐसे एक उधार लिए गृह को छोड़कर दूसरा गृह ढूँढ़ने के समय तक उसे शत्रुओं से बड़ा चौकन्ना रहना पड़ता है। इन प्रकवचों में शरीर छिपाने से योगी केकड़े को केवल यही लाभ नहीं होता कि उसका शरीर रक्षित रहता है, बल्कि वह अपने शिकार के जन्तुओं को भी धोखा देकर पकड़ने के लिए अपने रूप की विकरालता छिपाए रह सकता है। शिकार उसे निरापद प्रकवचीय कोमलांगी, घोंघा, शंख आदि समझकर निकट चले आते हैं, परन्तु वह उन्हें तुरन्त ही दबोचकर सहज आहार बना लेता है। इस प्रकार अपना निजी गृह न होने और गृह बना सकने की कला से भी विहीन होने पर भी योगी केकड़ा अपना कार्य बड़ी चतुरता से निकाल लेता है।

जन्तुओं को गृह की आवश्यकता विभिन्न रूप में हो सकती है। कुछ तो शत्रुओं से रक्षा के लिए ही आश्रय या छिपने का स्थल चाहते हैं। कुछ को ऋतुविषमता का सामना करने के लिए आश्रय की आवश्यकता पड़ सकती है। जल में ही रहने वाला जन्तु पानी सूखने के समय कहीं भूमि में छिपने का स्थान ढूँढ़ सकता है। भूमि पर रहने वाला ही जन्तु घोर शीत या घोर उष्णता से रक्षा पाने के लिए स्थान खोजता है। कुछ जन्तुओं को अपनी रक्षा या सुविधा के लिए आश्रय या सुरक्षित स्थल पाने की चिन्ता नहीं हो सकती, परन्तु सन्तानोत्पादन के लिए वे अवश्य

कोई रक्षित या छिपा स्थान ढूँढ़ते हैं जहाँ उनके अंडे, बच्चे आदि शत्रुओं की दृष्टि से बच सकें तथा ऋतुविषमता की भी मार उन पर असमय न पड़े।

आजीवन पर-गृह में निवास करने वाले जन्तु में एक केकड़े का नाम लिया जा सकता है जो 'पी क्रैब' या मटर केकड़ा नाम से पुकारा जाता है। यह सीपों या शम्बुक के गृह में ही अपना आश्रय प्राप्त करता है। सीप या शम्बुक दो पटों या प्रकवच-पट्टिका से बने सीप समान गृह रखते हैं। इन जन्तुओं को द्विपुटी प्रकवचीय जन्तु कहते हैं। जीवित सीपों या शम्बुकों के दोहरे पुटों के अन्दर ही मटर केकड़ा रहता और निर्भय बाहर-भीतर आता-जाता रहता है। सीप या शम्बुक उसे कोई हानि नहीं पहुँचाते।

इस जीवन-सहयोगिता से सीप या शम्बुक को लाभ भी होता है। जो कुछ आहार मटर केकड़ा लाता है, उसको स्वयं समाप्त नहीं कर सकता। कुछ अवशिष्ट भाग आश्रयदाता सीप या शम्बुक को भी प्राप्त होता है। कहा जाता है कि मटर केकड़ा किसी भावी संकट की आहट पाकर उसकी सूचना शम्बुक को तुरन्त दे देता है जिससे वह सीप के समान दोनों पटों को झट बन्द कर लेता है। मटर केकड़ा भी भीतर रक्षित पड़ा रहता है। जब कभी तनिक भी कोई खटका हो, मटर केकड़ा तुरन्त सीप या शम्बुक के प्रकवच में प्रवेश कर जाता है। इस कारण से जीवित सीप या शम्बुक का प्रकवच इसका भी घर कहा जा सकता है जिसके निर्माण का कष्ट उसे नहीं उठाना पड़ता।

पक्षी अपने अंडे देने के लिए ही घोंसले, कोटर, विवर आदि बनाते हैं। किन्तु बहुत से आलसी या चतुर पक्षी ऐसे भी होते हैं जो दूसरे पक्षियों द्वारा त्यक्त पुराने आश्रयस्थलों में ही अपने अंडे देने की व्यवस्था करते हैं। यह बात तो कुछ अनुचित भी नहीं।

जब उस आश्रयस्थल के मूल निर्मायक पक्षी के शिशु पोषित होकर जीवन संग्राम में प्रविष्ट होने योग्य वयस्क तथा पुष्ट होकर बाहर निकल आए तो उसे उन आश्रय स्थलों की आवश्यकता नहीं रह जाती। परन्तु कोयल तो ऐसा पक्षी है जो दूसरे पक्षियों के घोंसलों में उनके अंडे विद्यमान रहते ही बलात् अपने अंडे दे आती है। किन्तु यही नहीं, कोयल तो कभी भी अपने घोंसले का निर्माण नहीं करती, बल्कि सदा दूसरे पक्षियों द्वारा अंडा सेए जाने वाले घोंसलों में ही अपने अंडे देकर धोखे से उनके द्वारा ही अपने अंडे पोषित कराती है। कोयल का यह धूर्त कार्य कल्पना नहीं है। बल्कि बिल्कुल सत्य है। पर्यवेक्षकों का कथन है कि किसी कौए या अन्य पक्षी को घोंसले में अंडा देते देखकर नर कोयल उस पर आक्रमण करने का स्वांग सा करता है जिससे वह पक्षी अंडों से बचाव के लिए नर कोयल का पीछा करने के लिए बाहर निकल आता है। ठीक इसी समय मादा कोयल निकट के छिपे स्थान से आकर उस घोंसले में अंडा दे देती है। बेचारा कौआ या अन्य पक्षी लौटने पर कुछ परिवर्तन नहीं अनुभव कर पाता। वह सब अंडों को समान रूप से सेता है। कोयल के अंडे से बच्चे शीघ्र उत्पन्न होते हैं। वे अवसर पाकर अपना शरीर तनिक पुष्ट होते ही घोंसले के मूल स्वामी पक्षी के अंडों या बच्चों को नीचे गिरा देते हैं। कौए या अन्य पक्षी कोयल के बच्चे को ही घोंसले में पाकर अकेले उसी का पोषण करते हैं।

अमेरिका में 'मोलोथ्रुस पेकोरिस' वैज्ञानिक नाम से ज्ञात एक मैना होता है। उसे गोपक्षी भी कहा जाता है। वह भी कोयल की तरह ही अंडा देने के लिए दूसरे पक्षी का घोंसला चुनता है जिसमें उसका मूल स्वामी पक्षी विद्यमान ही हो। गोपक्षी ढोरों के मध्य रहता है। उनके शरीर पर के परोपजीवी कीटों को चुन-चुनकर

खाता है। इस कारण ढोर कुछ सुख का ही अनुभव करते होंगे और इसे बाधा न पहुँचाते होंगे। यह पक्षी अंडा देने के लिए घोंसला नहीं बनाता। मादा किसी पक्षी के घोंसले में उसके अंडों के मध्य ही अपने अंडे दे आती है जिनसे चार दिन में ही शिशु उत्पन्न होते हैं। इतनी शीघ्रता से मूल पक्षी के अंडों से शिशु उत्पन्न नहीं होते। बेचारा मूल पक्षी मैना के नवजात शिशु को शब्द करता देख मातृ स्नेह से आपूरित हो जाता है और चारा देने का उपक्रम करता है। कदाचित् अतिथि न समझकर अपना शिशु ही समझता है।

गोपक्षी के शिशु पंख जमते और शरीर पर यथेष्ट पर निकल आने पर उड़ने में समर्थ होकर घोंसले से बाहर उड़ जाते हैं। उन्हें अपने पोषक पक्षियों का ऋण चुकाने का कभी ध्यान नहीं रहता। उनको घोषित करने में मूल नीड़निर्मायक पक्षी अपने अंडों की अपेक्षा करते हैं, फिर भी गोपक्षी किसी प्रकार का ऋण नहीं मानता। जहाँ अंडे सेने या शिशुपालन का उत्तरदायित्व गोपक्षी के नर या मादा किसी पर भी नहीं होता, वहाँ उनका जोड़ा बनने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती। नर और मादा गोपक्षी स्वच्छन्द रहने वाले ही होते हैं।

अर्जेंटाइना के गोपक्षी (मोलोथ्रूस बोवेरियेंसिस) का भी अध्ययन किया गया है। डबल्यू० एस० हडसन नाम के वैज्ञानिक ने इस पक्षी की बचीखुची नीड़निर्मायक वृत्ति पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। यह पक्षी भी अन्य पक्षियों की नीड़-निर्मायक सार्वभौम वृत्ति का अनुसरण करता होगा परन्तु बाद में उस वृत्ति को इसने छोड़ सा दिया। हडसन ने दो अवसरों पर इस पक्षी को घोंसला बनाने का कुछ प्रयत्न करते देखा परन्तु दोनों ही अवसरों पर उसे पूर्ण करने में असफल पाया गया। कहीं कोई पक्षी विवर या घोंसला बनाये हों, वहाँ चक्कर लगा कर यह प्रवेश

करने की ताक में पाया जायगा। किन्तु तुरन्त प्रवेश कर जाने का यथेष्ट साहस नहीं दिखाई पड़ेगा। पक्षियों के बसने के लिए कृत्रिम निर्मित डब्बों के निकट भी यह बार-बार चक्कर लगाते तथा उस में घुस कर उसकी परीक्षा करते देखा जायगा। यही नहीं, इसे तो कहीं भी अंडा देते देखा जाता है। कभी-कभी तो भूमि पर ही अण्डे दे देता है जो सर्वथा नष्ट ही होता है।

योरोपीय नदियों में एक प्रकार की मछली होती है जिसका वैज्ञानिक नाम 'रोडियस एनारस' है। यह अपने अण्डों के लिए ऐसा सुरक्षित स्थल ढूँढ़ती है जिसे देखकर इसके कौशल पर आश्चर्य होता है। अण्डा देने के समय नर किसी मादा को निर्वाचित करता है अन्य नरों को उसके निकट नहीं आने देता। अण्डा देने का समय आने पर धारा के नीचे-ऊपर तैरती हुई मादा कोई सीप ढूँढ़ लेती है जो शयन करती रहती है। उसके पट खुले होते हैं। मादा मछली की पूँछ में उसकी अण्डेदानी का बढ़ा हुआ भाग रहता है। उसको वह सीप के पुटों के अन्दर प्रविष्ट करती है और उसके अन्दर अण्डा दे देती है। उधर नर आकर उसे सेचित (वीर्य कोष से संयुक्त) कर देता है। फिर नर और मादा कोई दूसरी सीप (द्विपुटी) ढूँढ़ते हैं और उसके पुटों के अन्दर दूसरा अण्डा देकर सेचित कर देने की व्यवस्था करते हैं। बाहर की आपदाओं से रक्षित रह कर ये अण्डे सीप पुटों के भीतर पोषित होते रहते हैं। शिशु उत्पन्न होते ही बाहर निकल आता है।

कुछ मछलियाँ मृत प्रकवचीय जन्तुओं के खोखले प्रकवच का ही प्रयोग करती हैं। तल पर औंधे पड़े सीपों को ऊपरी ढक्कन सा बनाकर गोबियस माइन्यूटस नामक मछली उसके नीचे अपने अण्डे देती है जहाँ वे अन्य जन्तुओं से सुरक्षित रह कर पोषित होते हैं। सीप का पल्ला (पुट) बालू में इंचों नीचे धँसा होता

है, इसलिए इस ठोस छत समान वस्तु के नीचे अण्डे निरापद रहते हैं। कभी-कभी नर मत्स्य उसके निकट रखवाली के लिए मौजूद भी रहता है। वह उसके नीचे आता जाता रहता है जिसके लिए आने जाने के विशेष द्वार बने दिखाई पड़ सकते हैं।

प्रावारकर्ण उलूक भी अपना घोंसला नहीं बनाता। वह कौवों या पंडुकों के त्यक्त घोंसले या गिलहरी के त्यक्त कोटर में ही अण्डा देने का उपक्रम करता है। इस तरह दूसरों के परित्यक्त किए घोंसलों से ही उसका काम निकल जाता है। मादा उसे सुधारने या मरम्मत करने का तनिक भी उद्योग नहीं करती। उसी में अण्डा देकर सेती है।

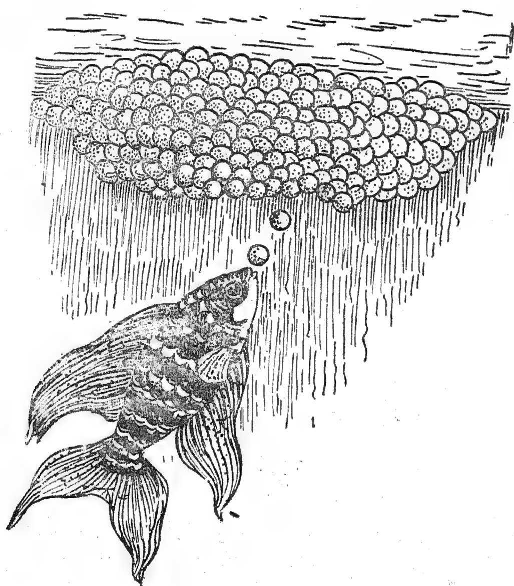


गृह-निर्माण का प्रयत्न

सर्दी, गर्मी, वर्षा या शत्रुओं से अपनी रक्षा करने या सन्तान उत्पन्न करके के लिए रक्षा-स्थल बनाने के उद्योग अनेक जन्तुओं में अनेक रूप के होते हैं। जो किसी भी रूप से कृत्रिम गृह बनाते हैं उनको गृहनिर्मायक जन्तु कहना उचित है। ऐसे जन्तुओं के गृहों को हम तीन विभागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला मिट्टी या लकड़ी में खुदे विवर, दूसरा—जो कुछ वस्तुओं के साथ जुटा रखने या बन्धन, सिलाई, बुनाई आदि युक्तियों से बनते हैं। तीसरा प्रकार उन गृहों का हो सकता है जो गीली मिट्टी द्वारा गढ़े होते हैं या अन्य वस्तुओं की दीवाल बनाने में उनको जुटाने के लिए गारा या सीमेंट रूप में मिट्टी का उपयोग हुआ रहता है।

भूमि या लकड़ी को छेद कर बिल बनाने की कहानी तो विचित्र ही है। परन्तु गृह-निर्माण के अन्य प्रकारों की कहानी उससे भी अधिक विलक्षण है। ऐसे गृह-निर्माण के प्रारम्भिक प्रयासों में बिना किसी बाह्य उपादान के ही शिशुपालन के लिए आश्रयस्थल बनाने का उदाहरण स्वर्गमत्स्य द्वारा जैसा उपस्थित किया जाता है, वह बड़ा कौतूहलवर्द्धक है। यह मछली अपने मुख से उत्पन्न लसिका (थूक) में हवा फूँक-फूँक कर बुलबुले उठाती है। यह बुलबुले यथेष्ठ पुष्ट पतली दीवालों युक्त होते हैं। वे परस्पर चिपक कर मंच सा बना लेते हैं जो जल-तल पर तैरता रहता है। इस तैरते आश्रय स्थल के नीचे स्वर्ग मछली अंडे लटका देती है।

एक नलिकाकार जन्तु की बाह्य त्वचा से कुछ स्निग्ध श्लेष्मा स्रवित होता है, परन्तु वह इतना दृढ़ नहीं हो जाता जो उनकी कड़ी खोल बन सके, इसलिए उसके चिकनेपन से ही लाभ उठाने का उद्योग करता है और आस-पास के पदार्थ, बालुका-कण, घोंघों के क्षुद्र खंड आदि ही परस्पर चिपका कर शरीर का आवेष्ठन बना लेता है। यह आवेष्ठन वही काम दे जाता है जो प्रकवचीय कोमलांगियों



स्वर्गमत्स्य का बुलबुलों का घोंसला

का शरीर के बाह्य तल पर उत्पन्न प्रकवच करता है। फ्रिगेनिया नामक कीट के लार्वा (इल्ली) इसी प्रकार अपना पृथक अस्तित्व बनाकर एक खोल सी बना लेते हैं जिसके अन्दर वे रह सकते हैं।

पानी से जो कोई भी वनी वस्तु प्रवाहित होकर उनके निकट आ पहुँचती है, उसे वे अपनी खोल में प्रयुक्त कर लेते हैं। जलीय वनस्पति के पत्रखंड तथा अधिक समय तक पानी में सड़ते-गलते रहने वाले काष्ठखंड के नन्हें टुकड़े, जो अधिक समय तक जल सिंचित रहने से भारी बन चुके होते हैं और तली में बैठ सकते हैं, या कम से कम तुरन्त तैर कर प्रवाहित नहीं होने लगते, उन कीटों की इल्ली (लार्वा) द्वारा खोल के निर्माण में सहज प्रयुक्त होते हैं। इसी तरह के कितने ही पदार्थों से कड़ी खोल बना कर इल्ली उस नली की भीतरी दीवाल पर रेशमी सूत्र का जाल मढ़ती है। उससे नलियाँ जल-अभेद्य हो जाती हैं और दृढ़ भी बन जाती हैं। इस तरह उसके लिए पुष्ट सुरक्षित आश्रय-स्थल बन जाता है।

कुछ जन्तुओं को गृह रूप में कोई ऐसा आवरण ही रखते पाया जाता है जो किसी अन्य जीवित जन्तु रूप में होता है। उसे बनाने की बुद्धि उसके लिए अपेक्षित नहीं होती। ऐसा एक जन्तु मकड़ा-केकड़ा कहा जा सकता है। इसका आवरण जिस विजातीय पदार्थ का होता है उसे अलगी या सूक्ष्मदर्शकीय समुद्री वनस्पति कहते हैं। अलगी या अन्य वनस्पतियों रूप के विजातीय पदार्थों को वह अपने कलेवर पर उगे या मढ़े रहने देता है। इस तरह के आवेष्ठन युक्त होने से वह केकड़ा अपना रूप छिपा रखने में सफल होता है। उसे शिकार करने में भी सुभीता होता है। दूर से चले आने पर शिकार उसको देख नहीं पाते। मकड़ा-केकड़ा तो ऊपरी कृत्रिम आवेष्ठन के कारण चट्टान सा ही दिखाई पड़ता है। एक वैज्ञानिक ने तो एक मकड़ा-केकड़ा को समुद्री वनस्पतियों से इतना अधिक आच्छादित देखा कि पास की चट्टानों से उसका रूप तनिक भी भिन्न नहीं दिखाई पड़ता था। ऐसी स्थिति में मकड़ा-केकड़ा स्वयं

गृह का निर्माण नहीं करता बल्कि एक विशेष परिस्थिति बन जाने देता है। किंतु यह सब प्रबन्ध अनायास ही नहीं हो जाता। अलगी या अन्य समुद्री वनस्पतियों की अपने शरीर पर बहुत अधिक वृद्धि हो जाने पर उनसे शरीर बोझिल हो जाने के कारण वह सारा आवेष्ठन, कभी नोच फेकता है और नए सिरे से नई अलगी के कुछ खंड शरीर पर रखता है।

अलगी के पूर्णत: नोंच फेकने पर उसका शरीर प्रत्यक्षत: पृथक रूप का ज्ञात होता है, परन्तु अलगी के छोटे खंड थोड़े समय में ही फैल तथा बढ़ कर उसके शरीर का बाह्य तल छिपाने में समर्थ हो जाते हैं। मकड़ा-केकड़े का यह परिष्कार कार्य केवल अपने आप हुई घटना नहीं कहा जा सकता। यह तो उद्देश्यपूर्ण कृत्य ही होता है। आवेष्ठन की वृद्धि का वह अवरोध करता है तथा नए सिरे से उगाने का भी उपक्रम करता है। अतएव उसके शरीर पर अलगी या अन्य वनस्पतियों की बाढ़ हमारे फूलों या पौधों की क्यारी में बरबस उग आई निरर्थक घासों सी नहीं कही जा सकती। मकड़ा-केकड़ा पीढ़ियों से यह वृत्ति रखते आया है। इस कार्य में उसकी अंतः-वृत्ति उपयुक्त होती होगी। उसे वनस्पति विज्ञान का ज्ञान नहीं होता। पौधों को काट द्वारा उत्पन्न करने की विधि का भी ज्ञान नहीं होता। किन्तु एक बार पूर्ण अलगी राशि को नोच कर शरीर स्वच्छ कर लेना तथा पुनः अलगी के टुकड़े उगने या बढ़ने के लिए शरीर पर रखना कुछ सार्थक प्रयत्न ही कहा जायगा। मकड़ा-केकड़ा का गृह समान ऐसे विधान का उपयोग प्रकृति की विचित्रता प्रकट करता है।

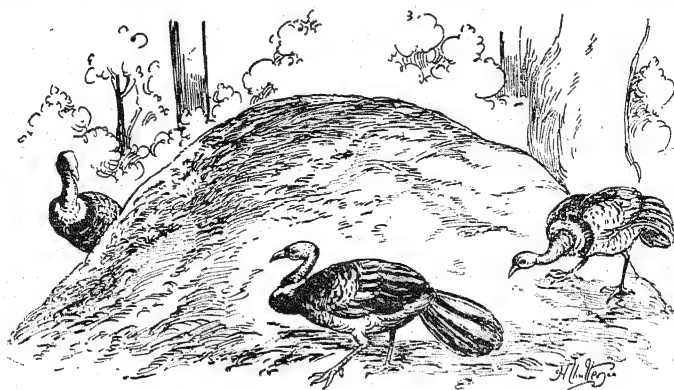
स्पंज केकड़ा भी अपना शरीर आवेष्ठित करने का एक अभिनव उपक्रम करता है। यह एक बड़ा स्पंज खंड ले लेता है तथा उसे अगली भुजाओं से पकड़े रख कर अपने कलेवर के ऊपर रखता

है। वह स्पंज खंड बढ़ने लगता है और उसके पूर्ण ऊपरी कलेवर को आच्छादित कर लेता है। यह स्पंज खंड उसके शरीर से पूर्णत: चिपका नहीं रहता। लहर का एक आकस्मिक प्रचंड वेग उसे दूर हटा फेंकता है। ऐसा होते ही स्पंज केकड़ा उस स्पंज पर कूद पड़ता है और फिर अपने शरीर पर रख लेता है। एक वैज्ञानिक ने स्पञ्ज केकड़े की इस वृत्ति का प्रयोगशाला में प्रदर्शन करने का प्रयत्न किया। इन केकड़ों में अपना शरीर आवेष्ठित करने की वृत्ति इतनी प्रबल होती है कि कृत्रिम जलजन्तुशाला में जब उसके शरीर पर से स्पञ्ज का खंड पृथक कर लिया जाता है तो वह कोई भी वस्तु सुलभ होने पर तुरन्त अपने शरीर के ऊपर रख लेता है। परिहास करने के लिए एक विदूषकीय क्षुद्र आच्छादन बनाया गया जिस पर कुछ हथियारों की कलंगी सी लगा दी गई। स्पञ्ज केकड़ा ने उस हँसोड़-पहनावे को तुरन्त शरीर पर रखकर अपना विचित्र रूप बना लिया। वह बेचारा क्या करता, अन्य कोई भी वस्तु उसे स्पञ्ज की जगह धारण करने के लिए सुलभ ही नहीं थी, उधर स्पञ्ज के नाम पर कोई भी वस्तु शरीर के ऊपर रखने का अभ्यास उसे नग्न नहीं रहने दे सकता था।

मकड़ा-केकड़ा तथा स्पञ्ज केकड़ा के आवरण धारण करने के उदाहरणों से इनके गृह-निर्माण की भावना स्पष्ट झलकती है। यह बात अवश्य है कि इनके लिए वे विवेचना वृत्ति नहीं रखते। वे तो केवल अंत:वृत्ति से प्रेरित होकर ही ऐसे आवेष्ठन धारण कर लेते हैं। स्पञ्ज-केकड़ा में पीढ़ियों से स्पञ्ज का खंड पकड़े रहने की वृत्ति संचालित रहने का यह प्रभाव होता है कि स्पञ्ज पकड़ने के लिए ही उनकी अग्र भुजाएँ विशेष रूप की विकसित हो गई होती हैं जिस कारण वे चल सकने या तैरने में कुछ भी सहायता नहीं कर सकतीं।

कुछ जन्तु इन केकड़ों की अपेक्षा गृह निर्माण में अधिक प्रयास

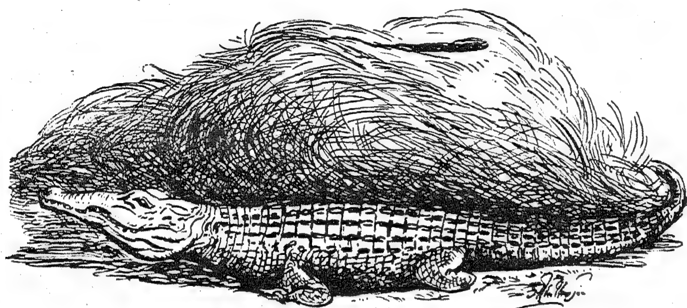
करते दिखाई पड़ते हैं। आस्ट्रेलिया का एक पक्षी कैथेटूरस लेथामी कहलाता है। इसका गृह-निर्माण अत्यन्त आरम्भिक रूप का होता है। गृह-निर्माण का कार्य केवल भड़भूँजों द्वारा संचित सूखी पत्तियों के ढूहे तक सीमित होता है। अंडा देने के कुछ सप्ताहों पूर्व यह पत्तियाँ जुटा कर एक बड़ा ढूहा बना लेता है। इसके लिए वह भूमि पर गिरी सभी पत्तियों को चंगुल से अपने पीछे फेंकता जाता है। ढूहा बन जाने पर ऊपर भी पत्तियाँ फेंक कर



सूखी पत्तियों के ढूहे का घोंसला

उसकी ऊँचाई बढ़ा लेता है। यह ढूहा थोड़े समय की सूखी पत्तियों द्वारा बना होने से कुछ आर्द्रता युक्त होता है। इसलिए उसमें भीतर की ओर दबाव होने से कुछ हल्की उष्णता उत्पन्न होती है। इस भद्दे आश्रय-स्थल में ही यह पक्षी अंडा देता है। वह प्रत्येक अंडे को ढूहे के अन्दर करता जाता है। अंडों का चौड़ा तल ऊपर रहता है। कुछ समय में अंडों से शिशु उत्पन्न होकर बाहर निकल आते हैं।

केवल पत्ती ही आदिम रूप का अस्थायी गृह नहीं बनाते। अन्य जन्तु भी ऐसा उद्योग करते पाए जाते हैं। कुछ मछलियाँ भी ऐसा प्रयास करती हैं। सरीसृप भी ऐसे उद्योगों का श्रेय प्राप्त करते हैं। मिसीसिपी के मगर का गृह-निर्माण उल्लेखनीय है। उसकी मादा एक यथार्थ घोंसला बनाती है। वह कोई निर्जन स्थान ढूँढ़ती है जो तटीय जल-वनस्पतियों की घनी झाड़ियों के अन्दर होता है।



मगर का घोंसला

अपने जबड़ों में ढो-ढोकर डालियाँ वहाँ भूमि पर रखती है। उसे ऊपर से पत्तियों द्वारा ढक देती है। वहाँ वह अंडे देती है तथा उन्हें वानस्पतिक पदार्थों से कौशलपूर्वक ढक देती है। इतना सब कुछ करने पर भी मादा अपना कार्य समाप्त नहीं समझती। वह निकट पड़ी रह कर उस झाड़ी पर बराबर दृष्टि रखे रहती है। शिशु उत्पन्न होने के दिन तक वह अपना प्रहरी कार्य स्थगित नहीं करती। अंडों से बाहर निकलने पर शिशु उसके साथ होकर पानी में चले जाते हैं।

एक जाति की मधुमक्खिका (पाटल गृही) गुलाब की पत्ती का एक टुकड़ा काट लेती है और उसे अपने वक्ष के एक छोटे छिद्र में

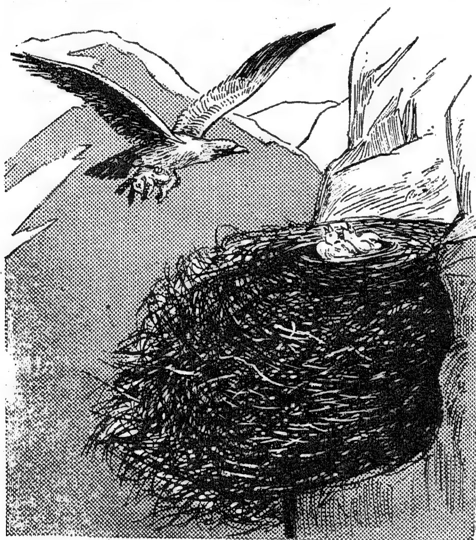
उठा ले जाती है। वहाँ पर उसे बड़े कलात्मक रूप में मोड़ कर दर्जियों के अंगुश्ताने (अंगुलित्राण) या छुच्छी के आकार का बना लेती है और इसमें मधु भर देती है। उसी में वह अंडा देती है। इसी प्रकार एक दूसरा कीट (ऐंथोकोपा) भी करता है। वह छेदों को पोश्त की पंखुड़ियों से मढ़ देता है।

रात्रिचारी पक्षियों में भी इसी प्रकार वृक्ष-कोटरों, पुराने मकानों, खंडहरों के छेदों में कोमल तथा गर्म पदार्थों के मढ़ने की वृत्ति पाई जाती है। इन्हें गड्ढे या कोटर न मान कर सज्जित घोंसला ही कहना अधिक उचित हो सकता है। यह बात अवश्य है कि वह मामूली ढंग की ही रचना होती है जिसमें शिथिल पदार्थ दृढ़ता-पूर्वक आबद्ध नहीं होते। बल्कि केवल मामूली आश्रय-स्थल होते हैं। बाहरी कोटर या छिद्र इन पदार्थों द्वारा बने इस शिथिल गृह का अवलम्बन ही होता है।

बहुत से पक्षी पदार्थों के दृढ़ बन्धन से अपने विचित्र घोंसले निर्मित करते हैं। दिवाचारी शिकारी पक्षी पदार्थों को आबद्ध कर घोंसला बनाने में विशेष कुशल होते हैं। उनकी रचना कलात्मक तो नहीं कही जा सकती परन्तु श्रम तथा उपयोगिता का उसमें अभाव नहीं होता। प्रायः निर्जन तथा दूरूह स्थलों में निर्मित होने के कारण ये घोंसले उनके शिशुओं या अंडों के उत्तम आश्रय-स्थल होते हैं। जब माता-पिता शिकार करने दूर के अभियान में गए होते हैं तब भी उनके शिशुओं को कोई भय नहीं होता। किसी खड़ी चोटी या उच्चतम वृक्षों के शृङ्ग पर ये विशालकाय आखेटक पक्षी अपने घोंसले निर्मित करते हैं। उनका घोंसला एक भारी मंच कहा जा सकता है जो सूखी लकड़ियों के परस्पर गुथे रूप का भंडार ही होता है। वह बोझ सँभालने में समर्थ होता है।

अमेरिका की सुनहली चील (स्वर्ण सुपर्ण) के सम्बन्ध में

वैज्ञानिकों ने पर्यवेक्षण कर ज्ञात किया है। कोलोरडो में घाटियों से अगणित सोते प्रवाहित होकर पर्वत के अंचल में पहुँचते हैं। वहाँ बहुत से दुर्गम चट्टानी उभाड़ होते हैं जिनमें सुनहली चीलों के लिए सुन्दर आश्रय-स्थल प्राप्त होता है। वहाँ वे विशालकाय घोंसले बनाती हैं। एक घोंसला तो इतना बड़ा मिला था कि उसमें मालगाड़ी के दो डब्बे में भरा जा सकने योग्य पदार्थ लगा था।



स्वर्ण सुपर्ण का घोंसला

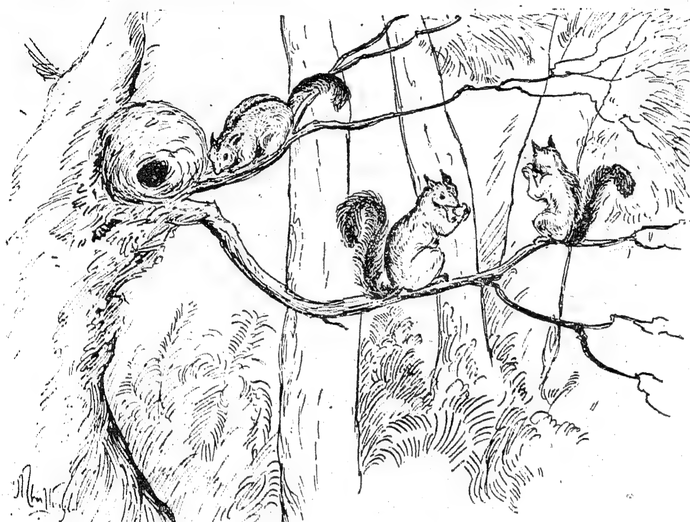
घोंसले की ऊँचाई सात फुट थी। ऊपरी तल पर वह छः फुट चौड़ा था। अनेक स्थानों पर पर्वत का ऊपरी भाग उस स्थान के ऊपर बढ़ आया होता है। फरवरी या प्रारम्भ मार्च में इस घोंसले की मरम्मत होती है और सदाबहार की डालें उस पर डाल दी जाती

हैं। इसका कोई उपयोग नहीं कहा जा सकता। जितने भी सुनहली चीलों के घोंसले देखे जा सके उसमें यह हरियाली युक्त डाल मिलती थी। कदाचित इसका यह भाव होता होगा कि घोंसला अधिकृत किया जा चुका है और दूसरा उस पर अधिकार न जमावे। नग्न या श्वेतशीर्ष अमेरिकीय चील के घोंसलों में भी ऐसा ही विचित्र दृश्य देखा जाता है।

इस चील के सम्बन्ध में एक वैज्ञानिक ने उल्लेख किया है कि फ्लोरिडा में इनके घोंसले विशाल होते हैं। पाँच-छः फुट तक उसका व्यास होता है। इतनी ही उसकी गहराई होती है। वह इतना दृढ़ होता है कि ऊपर से उस पर कोई आदमी चढ़ कर चल सकता है और उसके टूट गिरने का भय नहीं हो सकता। इसके घोंसले में प्रयुक्त लकड़ियों की मुटाई दो या तीन इञ्च होती है। ऊपर से दलदली घास या अन्य वनस्पति मढ़े होते हैं। बीच में प्रायः एक हल्का गड्ढा होता है जहाँ अंडे रक्खे जाते हैं किन्तु घोंसले की बाहरी छोर उस गड्ढे से इतनी दूर होती है कि नीचे से पत्ती को देख सकना असम्भव ही होता है। जब पत्ती अपना सिर बहुत ऊपर उठावे, तभी वह दिखाई पड़ सकता है। घोंसले में प्रायः बहुत से फालतू पदार्थ किनारों की ओर रक्खे होते हैं। उनका कोई अभिप्राय या उपयोग नहीं ज्ञात होता। सूखी या हरी घासों का गोला, या किसी चीड़ के पेड़ से तोड़ी हरी डाल, या कोई काठ या टुकड़ा, छाल या अन्य पदार्थ हो सकता है। ऐसा ज्ञात होता है मानो वे वहाँ पर घोंसले की पहचान कराने के लिए रक्खे गए हों। इसे अनेक घोंसलों में देखने से यह विश्वास होता है कि वे जान-बूझ कर रक्खे गए होते हैं।

गिलहरी का घोंसला भी कौशल की अपेक्षा श्रम का ही अधिक कार्य होता है किन्तु उसमें चील के घोंसलों की अपेक्षा अधिक चतु-

रता का कार्य होता है। परस्पर मिलाकर जकड़ी हुई लकड़ियाँ उसका निर्माण करती हैं। यह अपना घोंसला विषम ऋतु से अपनी रक्षा करने तथा शिशुओं के पालने के लिए बनाती है। घोर गर्मी,



गिलहरी का घोंसला

जाड़ा, वर्षा आदि का मौसम व्यतीत करने तथा रात को विश्राम के लिए अपने घोंसले का उपयोग करती है। यह बहुत चपल होती है तथा वृक्षारोहण में तनिक भी शिथिल नहीं होती। अतएव अपना घोंसला जङ्गल के उच्चतम वृक्षों की चोटी पर ही बनाती है।

गिलहरी बड़ी चालाक तथा परिवर्तनप्रिय होती है। अतएव समय-समय पर कई घोंसले बनाती है। तीन, चार या इससे भी अधिक घोंसले बनाती पाई जाती है। घोंसला बनाने में प्रयुक्त सामग्री वह भूमि से प्राप्त करती है। नीचे टूट कर गिरी हुई सूखी

डालों या कौओं अथवा अन्य पक्षियों के पुराने घोंसलों से अपना घोंसला बनाने की सामग्री प्राप्त करती है। काठ के टुकड़ों, लकड़ियों आदि को परस्पर आबद्ध कर पहले एक छिछला तल बना लेती है। इस तरह इसका घोंसला कालकूट (मैगपाई) पक्षी की भाँति बनता है किन्तु यह अच्छी तरह सुरक्षित रहना चाहती है। इसलिए ऐसे खुले से स्थल से सन्तोष नहीं करती। इस कारण इस मंच के ऊपर एक शंक्वाकार छप्पर बनाती है। इसके बनाने में लकड़ी का बड़ी कुशलता से उपयोग किया जाता है। लकड़ियों का इस प्रकार जाल बुना रहता है कि उसमें पानी प्रवेश नहीं कर सकता। इस घर की भीतरी सजावट भी होनी चाहिए। उसके लिए बहुत सूखी काई की कालीन सी फर्श पर बिछी होती है। उसे वह वृक्ष की छालों से नोच लाती है। यह नर्म तथा गर्म गद्दा उसे सुख से विश्राम करने का स्थल प्रदान करता है। नीचे की ओर स्थित द्वार उसे भीतर जाने का मार्ग देता है। द्वार प्रायः पूर्वाभिमुख होता है। दूसरी ओर भी एक द्वार होता है जिसमें से होकर वह बाहर भाग सकती है। मुख्य द्वार से शत्रु का आक्रमण होने पर ही भाग निकलने के लिए यह छोटा चोर दरवाजा होता है। यदि द्वार की दिशा से हवा बह रही हो तो गिलहरी काई-निर्मित दो अवरोधक पर्दों से उसे तुरन्त ही बन्द कर लेती है। हवा बन्द न होने तक द्वार बन्द ही रहता है।

वनमानुस भी अपने निर्मित गृह का उदाहरण दिखाते हैं, किन्तु गिलहरियों के गृह-निर्माण से अधिक कौशलपूर्ण कार्य नहीं होता। फिर भी उसका वर्णन देना उचित है। वनमानुसों का शरीर बड़े आकार का होने से गृह भी बड़ा होना आवश्यक है। अतएव उसके अपेक्षाकृत भारी गृहों को सँभाल सकना कठिन कार्य होता है।

औरङ्ग उटन सुन्डा द्वीपसमूहों के निर्जन जंगलों में रहता है। वहाँ यह वर्षा से रक्षा के लिए आश्रय-स्थल बनाने की आवश्यकता अनुभव नहीं करता। वृक्ष के मध्य एक मञ्च बना लेकर ही वह संतुष्ट रहता है। मञ्च-रचना लकड़ियों के परस्पर आबद्ध रखने से होती है। इसके ऊपर वह पत्तियों तथा शैवाल की गद्दी बिछा देता



चिंपैंजी का आवास

है। वह अन्य बनमानुसों की तरह बैठकर ही विश्राम नहीं करता,

बल्कि मनुष्यों की तरह लेटकर सोता है। बन्दी अवस्था में उसे जाड़ा लगने लगता है तो नीचे की बिछी गद्दी की पत्तियों तथा शैवाल को ही शरीर के ऊपर डाल लेता है।

ऊपरी तथा निचले गिनी में चिम्पैंजी अपना विश्रामस्थल वृक्षों पर ही बनाता है। पहले वह कोई बड़ी आड़ी डाल ढूंढ़ता है जिसका तल यथेष्ट हो। इस डाल के ऊपर ही वह आसपास की डालें झुका लेता है। उनको तोड़-मोड़कर परस्पर बाँधकर एक मञ्च सा बना लेता है। यह प्रारम्भिक कार्य कर लेने पर वह सूखी लकड़ी ढूँढ़ता है या अन्य टहनियाँ तोड़कर मञ्च में जोड़ लेता है। इस रचना के पूर्व ही वह एक बात का ध्यान रखता है कि शाखाओं का सन्धिस्थल कहीं निकट ही हो जिस पर मञ्च आधारित किया जा सके। इस तरह वह बड़ा सुन्दर आश्रय-स्थल बना लेता है। ये बनमानुस संघप्रिय होते हैं। एक दूसरे के पड़ोस में रहना इन्हें प्रिय होता है। वे प्रायः बड़े झुंड बनाकर ही अभियानों के लिए निकलते हैं। इतना सब होते हुए भी एकही वृक्ष पर एक या दो से अधिक मञ्च कभी भी नहीं मिल सकते। कदाचित इसका यह कारण हो कि इनके पेचीदे मञ्च की रचना एक वृक्ष पर कई बार हो ही न सकती हो। उनकी स्वच्छन्द वृत्ति भी कदाचित एक दूसरे के बहुत निकट रहने में बाधक हो।

एक बनमानुस अपना मञ्च बनाने में विशेष कुशलता प्रदर्शित करता है। यह पहले एक वृक्ष चुनता है। शाखाएँ तोड़कर उनके एक सिरे तने से बाँधता है तथा दूसरे सिरे किसी बड़ी शाखा से बाँधता है। इनके दृढ़ बन्धन के लिए वह दृढ़ लताओं का प्रयोग करता है जो बनों में प्रचुरता से उत्पन्न होती हैं। इस ढाँचे के ऊपर वह पत्तियों की तहें दबाता जाता है जिसे पानी विद्ध नहीं कर सकता। इस रचना के नीचे वह विश्राम करता है और तने को

आश्रय बनाता है। इस तरह दोपहर की कड़ी धूप तथा वर्षा के लिए वह रक्षास्थल बनाता है। पास-पास के वृक्षों में नर मादा आश्रय-स्थल बनाए होते हैं।

आस्ट्रेलिया विभिन्न जन्तुओं का देश कहलाता है। वहाँ पर एक कुंजविहारी पक्षी (बोअर बर्ड) होता है। वह अपने गृह को सुन्दर बनाने में कला का जैसा उपयोग करता है, वह उल्लेखनीय है। यह अपने गृह को अवकाश काल में विश्राम करने का यथेष्ट



कुंजबिहारी (बावर) पक्षी का कुंज (विनोद गृह)

सुन्दर स्थल बनाता है। यह कुंज की रचना कर दिन को उसमें

झुंड रूप में निश्चिन्त विश्राम करता है। उसे शिशुपालन के लिए बना घोंसला नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सन्तानोत्पादन के समय एक-एक जोड़े पक्षी पृथक-पृथक हो जाते हैं और कुञ्ज के ही निकट पृथक घोंसले बनाते हैं। ये आश्रयस्थल बिल्कुल निर्जन जङ्गलों में होते हैं और वृक्षों की जड़ में भूमि पर बने होते हैं। अनेक जोड़े मिलकर उसकी रचना करते हैं। नर का उसमें मुख्य भाग होता है। पहले वे थोड़ा उन्नतोदर मञ्च बनाते हैं जो लकड़ियों के परस्पर जोड़ने से बना होता है। वह भूमि की आर्द्रता से बचने का उपाय होता है। इसी मञ्च के मध्य में कुञ्ज बना होता है।

इस मञ्च के मध्य खड़ी-खड़ी डालियाँ मञ्च की लकड़ियों में फँसाई होती है। वे दो पंक्तियों में एक दूसरे के सम्मुख सजाई रहती हैं। फिर ऊपर की ओर मुड़कर जुट गई होती हैं जिससे एक छप्पर सा बन जाता है। इनमें प्रयुक्त पदार्थों के उभाड़ या नोक सदा बाहर की ओर ही होते हैं जिससे कमरे के अन्दर का भाग चिकना होता है और पक्षियों के पर उनसे टक्कर नहीं खाते। इतनी रचना हो जाने पर सजावट कार्य आरम्भ होता है। द्वार पर विचित्र-विचित्र वस्तुएँ जुटाई जाती हैं। श्वेत प्रस्तर घोंघे. तोतों के चमकीले पर आदि कुछ भी वस्तुएँ इनके द्वारा ढोई जा सकने पर ला पटकी जाती हैं। केवल दाना चुगने वाले ये पक्षी क्यों इस तरह का भंडार जुटाते हैं यह कहा नहीं जा सकता।

इन विविध वस्तुओं के समारोह का एक मात्र उद्देश्य इन पक्षियों की कलात्मक बुद्धि का प्रदर्शन होता है। वे ऐसे ही पदार्थ संग्रह करने का ध्यान रखते हैं जो धूप द्वारा सूखी बनी हुई तथा श्वेत रंग की होती हैं।

कुञ्ज (विनोद गृह) के दोनों द्वार के पूर्व ही सभी संगृहीत वस्तुएँ सजाई होती हैं। दोनों पार्श्व में रक्खी इन वस्तुओं की विविध-

रूपता नेत्रों को अपार आनन्द पहुँचाती है। सुन्दरतर वस्तुएँ कुंज या (विनोद-गृह) की दीवाल में मढ़ी होती हैं। इन पंखधारी विनोदियों का समय अधिकांशतः इस विनोदगृह में ही व्यतीत होता है। वे पंख स्वच्छ करते रहते हैं या कोई उनकी भाषा हो तो उस में जङ्गल की घटनाओं का परस्पर वर्णन करते रहते होंगे। उस विनोद-गृह के निर्माण में उन सब पक्षियों का भाग होता है जो वहाँ आया जाया करते हैं। अन्य जातियों के कुञ्जनिर्मायक पक्षी भी विनोदगृह निर्माण करते हैं। पक्षी की कुल लम्बाई तो २५ सेंटीमीटर (दस इंच) ही होती है परन्तु उसके विनोद-गृह की लम्बाई एक गज लम्बी हो सकती है।

कुछ मधुमक्खियाँ भी अपना छत्ता सजाती ज्ञात होती हैं। सुन्दर लिचेन के चौड़े खंड तथा सुन्दर पंख लाकर आकार के अनुसार सजाती हैं।



वर्तुलाकार गृह-निर्माण

कई पक्षियों को कोई मंच बनाकार बीच में थोड़ा प्यालीनुमा गड्ढा बनाने की साधारण गृह-निर्माण-कला प्रदर्शित करते देखा जाता है। वे प्यालीनुमा घोंसले कहे जा सकते हैं। उसमें कौशल का कम ही उपयोग कहा जा सकता है। लकड़ी, तिनके, घास, ऊन या नर्म पदार्थों का जमघट कर कोई मचान सा बना लेना और बीच में थोड़ा दबा या नीचा भाग रखना ही यथेष्ट होता है। किन्तु इस आकार के विरुद्ध जो जन्तु या पक्षी खोखली गेंद सा गोल या दीर्घ गोल (अंडाकार) निवासस्थल बनाते हैं उसमें बुद्धि या कौशल का अधिक उपयोग होना आवश्यक है।

जावा की एक मछली गौर भी कहलाती है। इसका वैज्ञानिक नाम ओस्फ्रोनेमस ओलफैक्स है। जलीय वनस्पतियों की पत्तियाँ परस्पर गूँथकर यह दीर्घ वर्तुलाकार (अंडाकार) घोंसला बना लेती है। इसका घोंसला या दीर्घ वर्तुलाकार गृह मुट्ठी के बराबर होता है। उसे पूर्ण करने के पूर्व विश्राम करने का नाम नहीं लेती। उसे पाँच या छः दिन में पूर्ण कर पाती है। केवल नर ही इस दीर्घ वर्तुलाकार नीड़ का निर्माण करता है। इसके पूर्ण बन जाने पर कोई मादा आती है और उसे प्रायः अंडों से भर देती है। छः सौ से लेकर एक हजार तक अंडे गिनती में होते होंगे। यह बहुसंख्यक अंडा-निर्माण विधान मछलियों की साधारण प्रचलित परिपाटी है जिससे जलजन्तुओं या धाराओं द्वारा बहुत से अंडे नष्ट हो जाने



सभी उनकी जाति नष्ट न हो, कुछ न कुछ रक्षित रह सकने वाले अंडे ही सन्तान का क्रम आगे बढ़ावें।

अटलांटिक महासागर में सरगोसा नामक जल-वनस्पति से आच्छादित एक समुद्र है जिसमें कोलंबस के पालदार जहाजों के फँस जाने की घटना इतिहास-प्रसिद्ध है। इस समुद्र में एक मछली रहती है जिसका वैज्ञानिक नाम ऐंटेन्नोरियस मारमोरेटस है। इसका चपटा तथा विशाल मुख इसे विचित्र रूप प्रदान किए होता है। उसका रंग भूरे तथा पीले रंग से व्यूहपट्टित (चितकबरा) होता है। ये रंग उस जलीय वनस्पति के होते हैं। अतएव रंग-सामञ्जस्य से यह मछली भी रूप छिपा सकती है। दूर से यह पहचानी नहीं जा सकती। यह अपने शिशुओं के लिए इन वन-स्पतियों से ही सुरक्षित आश्रय-स्थल निर्मित करती है। इसके नीड़-निर्माण में सरगोसा वनस्पति की फुनगियाँ प्रयुक्त होती हैं जिनका वहाँ बाहुल्य होता हैं। यह सभी फुनगियों, पत्तियों आदि सामग्री को एकत्र करती है तथा उसे अपने स्निग्ध श्लेष्मा से सिंचित कर दृढ़ रूप में कर लेती है। उसके मुख से निःसृत श्लेष्मा जम कर जब दृढ़ हो जाता है तो उसका यह घोंसला जल-प्रवाह से नष्ट या छिन्न-भिन्न नहीं हो सकता। उसी सुरक्षित प्लवनशील नीड़ में वह अंडे देती है। उसके बाद वह तैरता हुआ गृह भाग्यचक्र से किसी ओर बह निकलता है। मछली को भविष्य में उसमें स्थित अंडों की चिन्ता नहीं रहती। नवजात शिशुओं को भीतर ही रक्षित स्थल प्राप्त होता है। जल-तल पर बहते हुए ये घोंसले गोलाकार नारियल के बराबर बन गए होते हैं।

गाइना तथा ब्राजील में एक मछली होती है जिसका वैज्ञानिक नाम चोंस्टोस्टोमस पिक्टस है। वह भी जलीय नीड़ निर्माण में इसी तरह कुशल होती हैं। जलीय वनस्पतियों को लेकर वह एक

वर्तुलाकार (गोलाकार) नीड़ निर्मित करती है। उसे जल-तल के ऊपर जलीय नरकुलों के मध्य बनाती है। उसमें नीचे की ओर एक छिद्र छूटा रहता है। उस द्वार से भीतर प्रवेश कर मादा अंडे देती है। मादा द्वारा अंडे दे देने पर नर उन्हें संचित करता है और फिर दम्पति पास के स्थान में ही सहायतार्थ पड़े रहते हैं। इस सन्तान-प्रेम की भावना से उनका नाश भी होता है। तटवासी व्यक्ति इन मछलियों के सन्तान-प्रेम की भावना से अवगत होते हैं इसलिए उन्हें पकड़ लेने में असुविधा अनुभव नहीं करते। केवल एक टोकरी उस नीड़ के द्वार के निकट ले जाना पर्याप्त होता है। अपनी सन्तान को संकट में जान कर ये दम्पति दौड़ पड़ते हैं और उत्तेजनापूर्ण स्थिति में उस टोकरी में जा गिरते हैं।

स्टिकलबैक नामक मछली का नीड़निर्माण उल्लेखनीय है। यह एक छोटे आकार की सुन्दर मछली है जो तालाबों तथा सोतों में पाई जाती है। यह मछवाहों को कष्टदायक होती है क्योंकि यह प्रायः उनके मछली फँसाने के अंकुश में लटके चारा को नोच खाती है। उससे झूठी आशा सी बँध जाती है किन्तु मछली हाथ नहीं आती। यदि कोई जल-जंतुशाला निर्मित कर उसमें मछलियाँ पाली जायँ तो मछलियों के मध्य .किसी स्टिकलबैक का भी पहुँच जाना भयानक होता है। एक तो उसकी सन्तानवृद्धि बहुत ही अधिक वेग से होती है। दूसरे यह अन्य सब मछलियों को शीघ्र ही हड़प कर जल-जंतुशाला को उजाड़ बना देती है।

त्रिशल्य स्टिकलबैक जैकशार्प नाम से पुकारा जाता है। दश शल्य स्टिकलबैक को टिंकर स्थानीय नाम दिया जाता है। त्रिशल्य या जैक शार्प का शरीर पतला होता है मानों वह दोनों ओर से निचोड़ दिया गया हो। उसकी एक दुम होती है जो फाँके रहित होती है किन्तु पंखे की तरह फैली होती हैं। इसके पृष्ठ तथा पार्श्व

पर तीखे शल्य होते हैं जो इस जन्तु के शान्त रहने पर बदन से चिपके रहते हैं परन्तु किसी भय से उत्तेजित होने पर वे शल्य कड़े और खड़े होकर भयानक रूप धारण करते हैं। यह एक क्रोधी वृत्ति का क्षुद्रकाय जन्तु होता है। शान्त रहने पर तो उसका शरीर इस प्रकार चमकता रहता है मानो रुपहला हो किन्तु उसे तनिक भी छेड़ दिया जाय तो वह क्रोध से रक्त वर्ण हो जाता है, फिर हल्का पीला पड़ जाता है। उसके बाद विचित्र रूप से नीलारुण बन जाता है। यदि दो नर स्टिकलबैक एक ही जल-जंतुशाला में रक्खे जायँ तो इस रङ्ग-परिवर्तन को भलीभाँति देखा जा सकता है। वे जब युद्ध-संलग्न होते हैं तो वह दृश्य दर्शनीय होता है। दोनों पहलवानों का पैंतरा तथा रङ्ग बदलना विचित्र होता है। पराजित स्टिकलबैक का रङ्ग जहाँ मटमैला हरा हो सकता है वहाँ विजेता का रङ्ग चमकीला नीलारुण होता है। इन सब में विलक्षण बात यह है कि स्टिकल बैक अपनी सन्तान की रक्षा का बड़ा ध्यान रखता है। सन्तान-रक्षा का भार केवल नर पर ही होता है। अन्य जन्तुओं में जहाँ नर को परिवार की रक्षा का ध्यान नहीं रहता, केवल मादा ही सन्तान-पालन या रक्षा करती है, वहाँ स्टिकलबैक जंतुओं में नर ही सन्तान-पोषक होता है।

जब कोई नर स्टिकलबैक एकाकी रहते-रहते ऊब जाता है तो उसे परिवार बनाने की चिन्ता घेर लेती है। उस दशा में वह उन्मत्त सा होकर चारों ओर दौड़ता फिरता है। उसका उद्देश्य कोई नीड़-निर्माण के लिए उपयुक्त स्थल निर्वाचित करना होता है। जब कोई ऐसा स्थान मिल जाता है तो वह अपने मुख में रख कर वनस्पतियों के टुकड़े, पत्तियाँ, अलगी आदि ढो लाना प्रारम्भ करता है। उन्हें ठीक तरह सजाता है और गलीचे की भाँति बिछा देता है। वे सब टुकड़ों को एक दूसरे से सब दिशाओं में गूँथकर जाल सा बनाता है।

उन बुने भागों पर अपना शरीर रगड़ता है जिससे वे ठीक बैठ जायँ और उसके शरीर से स्रवित श्लेष्मा उन्हें पंक में चिपका सके। यह जल की तलेटी में बना वानस्पतिक गद्दा किसी भी तरह क्यों न



स्टिकलबैक का घोंसला

बनाया जाय, उसमें ऊपरी तल पर उठ आने की वृत्ति होती है। क्योंकि वह बहुत हल्के पदार्थों का ही बना होता है जो जल में तैरते प्राप्त होते हैं। यदि ऐसा हो तब तो स्टिकलबैक का नीड़निर्माण का सारा प्रयत्न व्यर्थ ही जाय। उसे बार-बार नए सिरे से ही नीड़ बनाना प्रारम्भ करना पड़े। इस बाधा से बचने के लिए वह कुछ

यत्न करता है। वह पथरीली छोटी-छोटी कंकड़ियाँ लाता है और इस वानस्पतिक गद्दे के ऊपर डालता है। वे इसे ऊपर उठने नहीं देती हैं। किन्तु अब भी यह नीव दृढ़ नहीं बनी होती। उसके ऊपर दूसरी, तीसरी तहें बिछाई जाती हैं। अन्त में एक दृढ़ रचना बन जाती है। इसके बाद वह मध्य भाग की ओर ध्यान नहीं देता। केवल किनारों पर ही भित्ति खड़ी करने लगता है। दूसरे शब्दों में वह गोली दीवाल बनाता है। भीतरी भाग प्यालानुमा खाली होता है।

स्टिकलबैक के घोंसले का बाहरी भाग तो भद्दे रूप का ही दिखाई पड़ता है परन्तु भीतरी तल सुन्दर रचना होती है। वह कोमल सूक्ष्मदर्शकीय वनस्पति (अलगी) तथा कोमलतम पंक से बना होता है। दीवाल ऊपर उठती जाती है परन्तु सीधी खड़ी न होकर इस तरह झुकती जाती है कि ऊपर जाकर परस्पर मिल जाय और इस तरह अन्त में घोंसला पूर्ण होता है। वह मुट्ठी के आकार का वर्तुलाकार होता है जिसमें एक ओर सुन्दर गोल द्वार होता है। ठीक इसी के विपक्ष एक दूसरा छोटा द्वार दूसरी ओर होता है किन्तु वह उतना सुन्दर नहीं बना होता।

जो स्टिकलबैक पहले धूमिल रंग का दिखाई पड़ता था, वही नीड़-निर्माण कर चुकने पर सुन्दरतम रंग का हो जाता है। उसकी पीठ हीरे समान हरी चमकीली हो जाती है, नेत्र चमक उठते हैं, कपोलों तथा अधोतल पर रक्तिम आभा आ टपकती है। वह बड़ा सुन्दर रूप कर लेता है। इस सुन्दर वेश को धारण कर वह मादा स्टिकलबैक को इस नए गृह में प्रवेश कराता है। मादा अंडे देती है और उसके बाद ही बाहर निकल जाती है। बेचारा नर घर में ही पड़ा रहता है। अपनी संतानों पर दृष्टि रखता है। वह वहाँ पर चुपचाप पड़ा रहता है। केवल उसके मत्स्य-पंख कंपित होते रहते

हैं जो आसपास के जल को विलोड़ित करते रहते हैं। जब तब वह अपना मुख नीड़ के द्वार में कर यह निश्चय कर लेता है कि संतानें निरापद ही हैं। फिर वह बाहर निकल आता है। अन्यथा उसके अंडों को जल-जन्तु सहज ही खा जायँ। शत्रुओं की न्यूनता नहीं होती। यहाँ तक कि मादा स्टिकलबैक द्वारा भी उन अंडों के खा लिए जाने का खटका रहता है। किन्तु नर स्टिकलबैक के आगे एक की भी नहीं चलती। कोई भी शत्रु निकट फटकने नहीं पाता। जब शिशु उत्पन्न होकर चपलता के कारण नीड़ से बाहर उछल भागने लगते हैं तब भी स्टिकलबैक उनकी रखवाली का उत्तर-दायित्व समाप्त नहीं समझता। वह उन्हें घेर कर फिर नीड़ के अन्दर ही पहुँचा देता है। जब वे यथेष्ट पुष्ट हो जाते हैं तभी उन्हें नीड़ छोड़कर समुद्र में बाहर निकलकर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की अनुमति मिलती है।

गोबियस नाइजर नामक मत्स्य भी स्टिकलबैक की तरह अपने संतानों का आश्रयस्थल बनाता है। यह समुद्र-तटों तथा नदियों के चौड़े मुहानों पर पाया जाता है। नर गोबियस नाइजर ही अलगी की पत्तियों या अन्य वानस्पतिक पदार्थों का जाल सा बनाकर नीड़ निर्माण करता है। फिर मादा की खोज में निकलता है। एक-एक कर मादाएँ उसमें आकर अंडे दे जाती हैं। फिर वह निकट रहकर उस नीड़ की रक्षा करता है। संतानों के उत्पन्न होने और पुष्ट हो जाने के बाद वह इस उत्तरदायित्व से मुक्त होता है।

नाना प्रकार के पदार्थों को गूँथकर वर्तुलाकार नीड़ बनाने में कुछ स्तनपोषियों का भी नाम लिया जा सकता है। एक वामन मूषक (मूस माइन्यूटस) नाम का चूहा होता है। कुतरने वाले (कृन्तकों) में यह एक क्षुद्रतम आकार का जन्तु होता है। यह प्रायः जलीय वनस्पतियों के मध्य रहता है। कदाचित यही कारण है कि

यह अपनी सन्तान के लिए हवाई घोंसला बनाने के लिए विवश होता है। यह नीचे की भूमि प्रायः आर्द्र और जलमग्न रहने से वहाँ सन्तानोत्पादन नहीं कर सकता। इसी कारण इसका घोंसला बनता है। अपने घोंसले का प्रयोग यह बारहो मास नहीं करता। उसका उपयोग केवल सन्तानोत्पादन के लिए होता है। इस कारण उसे उसका गृह न कहकर घोंसला या नीड़ कहना ही उचित है। इसकी रचना भी अन्य जन्तुओं या पक्षियों के घोंसले के नमूने पर हुई रहती है।

यह बौना चूहा अपने निवास-स्थल के निकट कोई पौधे का तना चुनता है जिसमें पत्तियाँ कुछ परस्पर गुँथी सी हों किन्तु बहुत



वामन चूहे का घोंसला

अधिक घनी न हो जिससे बीच में कुछ खाली स्थान भी हो और

उसी के मध्य नीड़-रचना का आयोजन किया जा सके। प्रारम्भ में बड़ा कौशल आवश्यक होता है। वह दूर जाने के स्थान पर निकट सुलभ पदार्थों का ही ठीक प्रयोग कर लेने का उद्योग करता है। पहले उस थोड़े से उलझे झुरमुट का ठीक तरह पर निरीक्षण करता तथा ध्यान से देखकर लगभग तीस पत्तियाँ दृष्टि में रख लेता है जो उपयुक्त जान पड़ती हैं। उन्हें तोड़े बिना ही सात-आठ चीरों में विभक्त करता है जो मूल भाग में पत्ती की भेंटी (वृन्त) से जुटे ही रहते हैं। वह भेंटी भी पौधे से लगी ही रहती है। यह इन पदार्थों को आश्रयस्थल में लगे रहकर ही उपयोग करने का सुन्दर ढङ्ग होता है।

इन रूपों में बहुत सी पत्तियाँ चुनकर तथा उन्हें पौधे के डंठल तथा भेंटी (वृन्त) से संलग्न रखकर ही लम्बे टुकड़ों में चीर-चीर कर इतनी अधिक सामग्री सामने रख लेता है कि उनसे बनी हुई वस्तु स्वतः ही पौधों के बल ऊपर अटकी पड़ी रह सकती है और मंच रूप में उसका सुन्दर गोल नीड़ तैयार हो सकता है। उन चीरों को बड़ी युक्ति से गूँथने का उद्योग करता है। पहले एक चीरे को लेकर वह इधर से उधर जाता है, फिर उसके ऊपर दूसरी पत्ती का दूसरा चीरा लाकर दूसरी ओर ले जाता है। इस तरह बुनकर वह धीरे-धीरे मुट्ठी के बराबर खोखला गोला सा बना लेता है।

अपने नीड़ की रूपरेखा का ढाँचा बनाकर उसे भीतर से नर्म पदार्थों से मढ़ना बौना चूहे के लिए कठिन कार्य नहीं होता, क्योंकि नर्म पत्तियाँ, फुनगियाँ आदि उसे सहज सुलभ होती हैं। वह पौधों के रेशों, कपास या रेशे युक्त दानों तथा फूलों, पंखुड़ियों से कोमल गद्दा बना लेता है। वे बड़ी सावधानी से भीतर मढ़े जाते हैं जिससे भीतर मादा द्वारा शिशु-उत्पादन पर बाहर से शत्रुओं के आक्रमण या आँधी, पानी आदि ऋतुविषमता का प्रहार नहीं

हो सकता। चूहे का यह घोंसला वैसी ही उत्तमता से बना होता है जैसा वृक्षों पर पक्षियों द्वारा बना कोई सुन्दर नीड़ हो सकता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि यह भूतल के निकट ही होता है। और उसमें अंडे न दिए जाकर सदेह शिशु ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि यह किसी अंडज का नीड़ नहीं होता बल्कि स्तनपोषी जन्तु का जनन-गृह होता है।

वामन मूषक को छोड़कर एक दूसरा स्तनपोषी जन्तु भी होता है जो नीड़-निर्माण करने की कुशलता प्रदर्शित करता है। इसे हम वृक्षचारी गिलहरी रूप में जानते हैं। कलंदक या गिलहरी को कितनी स्फूर्ति से एक डाल से दूसरी डाल पर उछल-कूद करते जाते देखा जाता है। वृक्ष पर इतनी कुशलतापूर्वक उनकी गति यह सहज ही प्रदर्शित करती है कि इस जन्तु का निवास भूमि नहीं, बल्कि वृक्ष ही है। हाँ, कभी-कभी भूमि पर उतर कर मानों अन्य भूतलवासियों को अपना दर्शन मात्र देती है। इस कारण यह जन्तु यदि वृक्ष पर सन्तानोत्पादन के लिए अपने नीड़ का निर्माण करता है तो उसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं।

एक या एक जोड़े कलंदक (गिलहरी) के चार-चार घोंसले बने हो सकते हैं। उनमें कुछ तो कौओं या कालकूट के पक्षी (मैगपाई) के पुराने घोंसले ही होते हैं। जिस घोंसले में कलंदक स्वयं रात्रि निवास करता है और संतानोत्पादन करता है, वह घोंसला अवश्य ही उसकी अपनी रचना होती है। वह वृक्ष के तने या शाखा के कोटर या शाखा-स्कंधों में बना होता है। यह खोखले गेंदे के आकार का होता है। संकट की आशंका होने पर यह अपने घोंसले को छोड़कर किसी दूसरे सहायक घोंसले में चला जाता है। शिशुओं को धीरे-धीरे एक-एक कर कहीं उठा ले जाता

है। वह घोंसला उस वृक्ष पर ही किसी दूर की शाखा पर बना हो सकता है।

वर्तुलाकार घोंसले बनाने में अनेक पक्षी कुशल होते हैं। घरेलू गौरैया (गृह कुलिंग) का बनाया घोंसला वर्तुलाकार होता है। यह बस्ती में मनुष्य के निकट रहती है। इसीलिए गृह कुलिंग इसका नाम पड़ा है। दीवाल, खंभे, बारजे, रोशनदान आदि में कहीं भी कोई छिद्र अपना प्रवेश होने योग्य पाकर उसे घोंसला बनाने का स्थान चुनती है। वहाँ पर संतोषपूर्ण घोंसला बनाती है। कभी-कभी दूसरे घरेलू पक्षी को भगाकर भी उसके घोंसले पर अधिकार जमा लेती है। गृह-चटी (हाउस मार्टिन) पाश्चात्य देशों में घरेलू पक्षी होता है। जब उसके घोंसले पर अपना अधिकार जमाने के लिए गौरैया उसे भगा देती है तो कभी-कभी उसे प्राण भी गँवाने पड़ जाते हैं। गृह-चटी लौटकर अपने पुराने घोंसले का द्वार पंक से बन्दकर देती है। उस दशा में गौरैया भीतर ही पड़ी रहकर मृत हो जाती है।

शैल-चटी (सैंड मार्टिन) द्वारा बनाए बिल या खोखले वृक्ष में भी गौरैया अपना घोंसला बनाती है। यह उल्लेखनीय बात है कि गृह-कुलिंग जब कभी किसी सुविधाजनक छिद्र में घोंसला बनाने का अवसर पाती है, उसका घोंसला ऊपर से खुला हुआ अर्थात् प्याली या डलियानुमा होता है। किसी छत के नीचे, खोखले वृक्ष में या बलुहे कगारे के छिद्र में उसका घोंसला ऊपर से खुला होगा, परन्तु किसी खुले वृक्ष, झाड़ी या अन्य खुले स्थल में उसका घोंसला बना हो तो वह खोखली गेंद समान वर्तुलाकार होता है। उस दशा में ऊपर से घनी छाजन या आवरण का प्रबन्ध करना पड़ता है जिससे वर्षा से भीतरी तल को सुरक्षित रक्खा जा सके।

ऐसा ज्ञात होता है कि गृह-कुलिंग का निर्मित घोंसला पहले

खोखले गेंद सा वर्तुलाकार ही होता होगा, परन्तु ऊपर से बना बनाया आश्रय प्राप्त होने पर इसने खुले रूप का डलियानुमा घोंसला बनाना ही प्रारम्भ किया होगा। वर्तुलाकार घोंसला बनाने में अधिक श्रम तथा कौशल आवश्यक होता है, अतएव काम चल सकने पर कम परिश्रम का प्यालानुमा या डलियानुमा खुला घोंसला ही पर्याप्त रहने लगा होगा। गौरैया का घोंसला उसके आकार की दृष्टि से भारी-भरकम होता है। यह घास-पात, ऊन, चिथड़े, कागज के टुकड़े या किसी भी अन्य हल्के सुलभ पदार्थ से निर्मित होता है। उसमें पर का अस्तर दिया होता है। ये चिड़ियाँ बस्तियों में मनुष्य के निकट तो रहती हैं। परन्तु इनसे फसल या बाग-बगीचों की बड़ी हानि होती है।

कालकूट पक्षी काश्मीर, तिब्बत, चीन आदि के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों में भी होता है। इसका घोंसला प्राय: ऊँचे वृक्षों पर होता है। यह कँटीली झाड़ियों में भी पाया जाता है। यह बड़ा बुर्जनुमा बना होता है जिसमें सूखी लकड़ियों में बाहर की ओर निकले काँटे लगे होते हैं। काँटों के कारण अन्य पक्षी इसके घोंसले पर आक्रमण करने का साहस नहीं करते। घोंसले का निचला तल गहरी डलिया सा होता है। उसमें लकड़ियाँ पंक के गारे से मढ़ी हुई होती हैं। उसमें पतली टहनियों की दूसरी तह होती है। उसके भी ऊपर नन्हीं जड़ों की तह होती है। इस व्यवस्था का विशेष लाभ होता है। जब घोंसला भारी तूफान में पड़ा हो तो वर्षा का बहुत सा पानी घोंसले में पहुँच कर भी अंडों या बच्चों को भिगो नहीं पाता। बाद में वह बह-बह कर निकल ही जाता है। दूसरे घोंसले की फर्श नर्म-लचीली भी रहती है।

एक बार एक वैज्ञानिक ने एक कालकूट के घोंसले सहित पतली डाल को काट लाने का आदेश दिया। डाल आरी से काटने पर

दुर्भाग्य से घोंसले के साथ ही भूमि पर गिर गई किन्तु उसके भीतर की तह इतनी लचकदार थी कि सत्तर फुट की ऊँचाई से गिरने पर भी उसमें विद्यमान एक मात्र अंडा पूर्ण सुरक्षित ही पाया जा सका।

अपने घोंसले का बुर्ज बनाने के लिए यह पक्षी लम्बी, काँटेदार टहनियाँ ढूँढ़ता है। उसे घोंसले के ढाँचे में मढ़ देता है। उसे चारों ओर से गूँथ देता है जिससे एक खुला जाल बन जाता है। भीतरी भाग पूर्णतः छिप नहीं जाता किन्तु यह एक दृढ़ गढ़ी का रूप धारण कर लेता है। इस कारण कालकूट अपना घोंसला प्रायः विचित्र दृश्य का होने पर किसी एकाकी वृक्ष में निडर होकर बनाता है। इस पक्षी में चोंचों तथा चङ्गुलों के प्रहार से शिकारी पक्षियों का सामना करने की सामर्थ्य नहीं होती, अतएव एकाकी घोंसला बनाना उसका साहसपूर्ण कार्य ही हो सकता है, फिर भी घोंसले को दृढ़ सुरक्षित बनाकर वह जीवन-संघर्ष में विजयी होता है। घोंसले के पार्श्व में छोड़ा हुआ छिद्र उसके बाहर-भीतर जाने का मार्ग होता है किन्तु उसकी चौड़ाई केवल इतनी ही होती है जिसमें वह भीतर आ-जा सके। इस कारण किसी बड़े शिकारी पक्षी मधुबाज (टीसा) या शवभक्षी कौवे आदि का उसमें प्रवेश नहीं हो सकता।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि कालकूट नीड़निर्माण में तो कुशल होता ही है, परन्तु वह कई घोंसलों का निर्माण करता है। ऐसा अनुमान होता है कि वह उसके घोंसले पर किसी शत्रु की दृष्टि लगी न रहने के लिए ही छलपूर्ण कार्य होता है। अँग्रेजी शासन के समय गवर्नर-जनरल के एक समान ही अनेक निवास-कक्ष बने होना या एक प्रकार के ही अनेक रेल के डब्बे जोड़कर यात्रा की व्यवस्था करना एक दृश्य होता था। कदाचित उसी नमूने पर कालकूट भी कई घोंसलों का निर्माण प्रारम्भ करता है। यथार्थ

में उसका असली घोंसला तो एक ही होता है जिसे वह पूर्ण करता रहता है, परन्तु कोई नीचे से देख रहा हो तो वह तुरन्त मुख्य घोंसले से उड़कर अन्य घोंसलों पर कार्य प्रारम्भ कर देता है। उधर प्रातः-सायं चुपचाप यथार्थ मुख्य घोंसले का भी निर्माण-कार्य चलता रहता है।

चिकुर (रेन) पक्षी में नर मादा दोनों नीड-निर्माण में व्यस्त देखे जाते हैं। किन्तु जोड़ा न बन सकने पर अकेला नर ही एक दो नहीं, कितने ही घोंसले बना बैठता है। एक नर चार घोंसले पूर्ण कर चुका था तब मादा उसके सम्पर्क में आई। फिर दोनों ने चार अन्य नए घोंसले बनाए। मादा तंग आकर उसे परित्याग कर चली गई। फिर भी नर सप्ताहों तक नए घोंसले बनाने में लगा रहा। उसने दो नए घोंसले फिर पूर्ण किए। इनका क्या उपयोग हो सकता था, यह बता सकना कठिन है। चिकुर कहीं भी, किसी स्थल में घोंसला बना लेता है। शैवाल, घास-पात या अन्य किसी वस्तु को गूँथ कर परों का अस्तर देकर वर्तुलाकार नीड निर्मित कर लेता है।



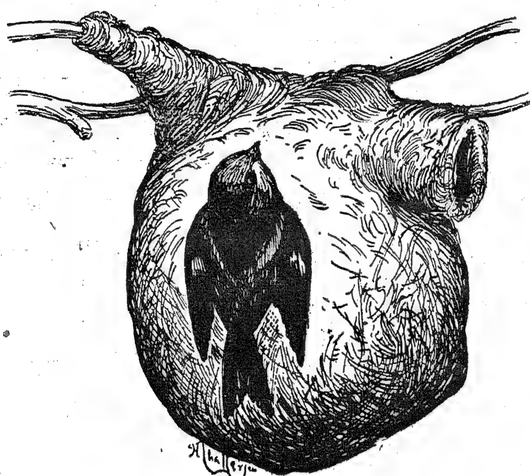
कलात्मक गृह-निर्माण

बुनाई, सिलाई आदि कर नीड़-निर्माण में पक्षियों को अवश्य ही उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हैं। हम इन्हें कहीं पत्तियों के लम्बे चीरे निकालते, कोई तिनका, घास-पात उठाते और उससे कहीं ओट के स्थान निर्जन स्थल में भव्य गृह-निर्माण करते देखते हैं। वे इन पत्तियों के चीरों, तिनकों, घास-पातों, फुनगियों, बालों, रोम, या रेशे युक्त अथवा अन्य कितने ही पदार्थों को ही मिलाकर अपना सुखद निवास बना लेते हैं। बाहरी ढाँचा भले ही मोटी और भद्दी वस्तुओं का बना हो, परन्तु भीतरी भाग, अस्तर, फर्श आदि मुलायम पदार्थों से ही बना या मढ़ा होता है। वह अंडों या नव-जात शिशुओं को उष्णता प्रदान करने वाला स्थान भी होता है। पक्षियों के ये घोंसले कहीं शाखा-स्कंधों या झाड़ी के अन्दर छिपे किसी पौधे में कुछ छिपे रूप में होते हैं जिनका रचना-कौशल अवश्य प्रशंसनीय होता है।

पक्षियों के नीड़ों के इतने प्रकार होते हैं कि उन सब का न तो एक जगह ठीक वर्णन ही दिया जा सकता है और न सबके नमूनों का चित्रण कर सकना किसी एक के बूते की बात हो सकती है। फिर भी कुछ देशी-विदेशी नीड़ों के नमूनों के चित्र तथा वर्णन मनोरंजन तथा कौतूहल वर्द्धन के लिए दिए जाते हैं।

लिथ्यूनियन टिटमाउस नामक पक्षी की जाति पोलैंड, गैलीशिया तथा हंगेरी के जलमग्न स्थलों में आर्द्र स्थलीय वन-

स्पतियों, नरकुलों, किलक आदि के मध्य रहता है। इसका घोंसला सदा ही पानी के ऊपर दो-तीन गज ऊँचाई पर किसी पौधे से लटका रहता है। सभी को एक प्रकार ही सुन्दर नीड़ बनाते नहीं देखा जाता, उनमें विभिन्नता भी होती है। कुछ अधिक चतुराई से बने



टिटमाउस का घोंसला

होते हैं। कुछ में विशेष कौशल प्रयुक्त हुआ रहता है। कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं कि वह अपने नीड़ को शीघ्र बनाने को विवश होता है। प्रायः ऐसा होता है कि कालकूट पक्षी अपनी चोंचों के प्रहार से उनके घोंसले उजाड़ सा डालता है। इस कारण बेचारों को अपना घोंसला जल्दी-जल्दी नए सिरे से बनाना पड़ता है। यदि ऐसी दुर्घटना दो या तीन बार एक ही स्थल पर हो तो यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ऋतु समाप्त होने के पूर्व ही वे जो कुछ भी थोड़ा बहुत आवरण बना सकते हैं,

घोंसले के नाम पर बनाकर संतोष करते हैं। उनका किसी भी प्रकार बना घोंसला एक बटुए की तरह होता है जो आठ इञ्च ऊँचा तथा पाँच इञ्च चौड़ा होता है। पार्श्व भाग में एक छिद्र होता है जिसमें एक मार्ग कुछ बाहर तक बढ़ा होता है। वह प्रायः आड़ा ही होता है। उसी द्वार से भीतर प्रवेश किया जा सकता हैं।

किसी-किसी घोंसले में दूसरा छिद्र भी होता है किन्तु उसमें मार्ग नहीं बना होता। प्रत्येक घोंसले के बनते समय यह दूसरा छिद्र रहता अवश्य है किन्तु घोंसला पूरा होते-होते प्रायः उसे बन्द कर दिया जाता है। अपना घोंसला बनाने का निश्चय करने पर यह पक्षी कोई लटकती डाल ढूँढ़ता है जिसको वह घोंसला लटकाए रखने का दृढ़ आधार बना सके। उसी से वह नीचे लटकता अगल-बगल बुनता है। वह ऊन तथा बकरे के बाल परस्पर गूँथकर दो तहें बनाता है जो नीचे परस्पर मिल जाती हैं। यही घोंसले का पहला ढाँचा होता है। यह चौड़े पेंदे की टोकरी सी वस्तु बन जाती है। यह केवल आरंभ ही होता है। सारी दीवाल नई सामग्री से पुनः पुष्ट की जाती है।

अमेरिकीय बाल्टीमोर कांचन (पीलक) पक्षी बाल्टीमोर पक्षी नाम से भी प्रसिद्ध है। यह बुनने की क्रिया में बड़ा प्रवीण जन्तु है। यह दृढ़ डंठलों तथा सन या छालटीन को शाखा-स्कंध युक्त पौधों में बाँधकर लटकाता है। वह बंधन उसी अनुपात में होता है जितना घोंसले की चौड़ाई रखना अभीष्ट होता है। फिर उसी से संलग्न बहुत कोमल चटाई सी बना लेता है। इसके घोंसले का पतला भाग शाखाओं से बँधा होता है, और चौड़ा भाग नीचे होता है। नीचे के भाग में एक छिद्र होता है। भीतर के भाग में कोमल वस्तुएँ मढ़ी होती हैं जो बाहरी तह की वस्तुओं के साथ ठीक तरह बुनी होती है। उनके बाहरी भाग में घोड़े के बाल की तह

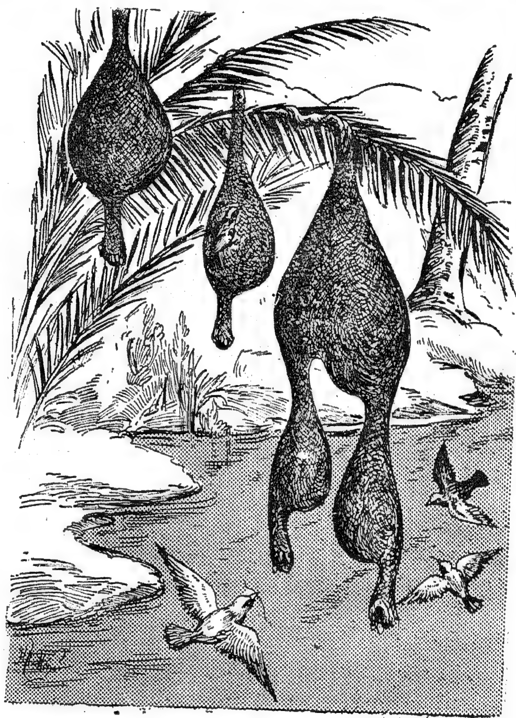
होती है। इससे ऊपर धूप तथा वर्षा से रक्षा करने के लिए पत्तियों का स्वाभाविक चँदोवा होता है।



बाल्टीमोर कांचन और उसका घोंसला

रक्तवभ्रुग्रीव सुगृह (बया) बड़ा कौशल प्रदर्शन कर अपना

घोंसला बनाता है। इसका घोंसला अत्यंत ही सूक्ष्मता से बुना होता है। उसका रूप उल्का लटके तानपूरे या सितार की तरह कहा जा सकता है जिसमें ऊपर गोले से भी आगे कुछ बढ़ा भाग हो।



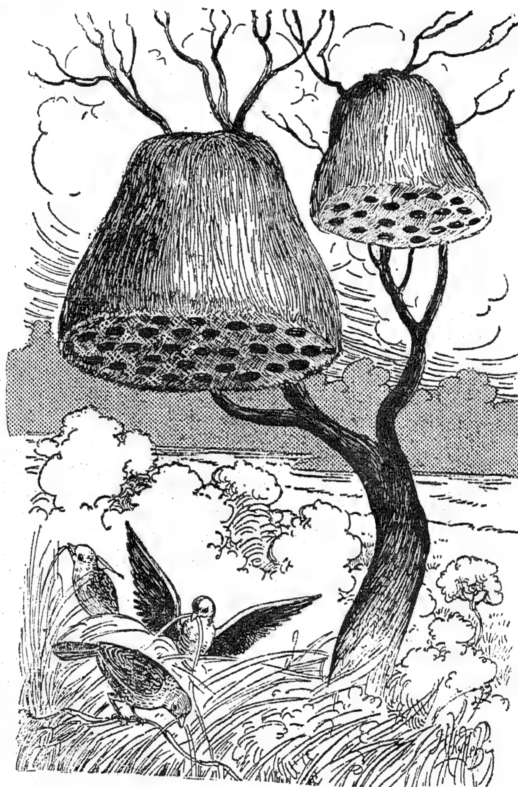
बया का घोंसला

इसे लम्बी उलटी रक्खी सुराही भी कह सकते हैं जिसका लम्बा मुख नीचे हो और गोल कुप्पेनुमा भाग के ऊपर भी कुछ भाग छोटा सा निकला हो। इस लम्बोतरे किन्तु ऊपरी भाग से कुछ ही

नीचे अधिक गोल फैली बनी हुई रचना को बया किसी शाखा से लटकाता है। इन घोंसलों के पास ही खुले पेंदों के भी घोंसले बने होते हैं जिनमें बीच में एक आड़ी बैठक सी बनी होती है। इसमें नीचे लम्बी नली नहीं होती। यह शायद नर का आवास या झूला होता है। भारत का बया तथा जावा का पीतवर्ण बया पक्षी भी झूला तथा सुराहीनुमा घोंसला बनाता है। किन्तु घोंसला बुनने की यह कला केवल बया पक्षियों तक ही सीमित नहीं, अन्य कई जातियों के पक्षी भी इतनी ही कुशलता से घोंसले बुन लेने का उदाहरण रखते हैं।

जब जन्तु संघ रूप में कोई कार्य करने में संलग्न होते हैं तो वे अवश्य अन्य निकटवर्ती जातियों के एकाकी जीवी जन्तुओं से अधिक कौशलपूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं। गृह-निर्माण भी इसके लिए अपवाद नहीं कहा जा सकता। दक्षिण अमेरिका में रहने वाला संघप्रिय बया पक्षी इसी प्रकार अपना घोंसला अत्यन्त विशद रूप का निर्मित करता है। उनके घोंसले को सर्वोत्तम रचना कहना अनुचित नहीं हो सकता। ये पक्षी यथेष्ट संख्या में उपनिवेश रूप में एकत्र रहते हैं। एक संघ में दो सौ सदस्य तक हो सकते हैं। कभी-कभी तक पाँच सौ तक भी सदस्य होते हैं। उनका निर्मित नगर विशदता की प्रतिमूर्ति सा होता है। पहले वे घास के द्वारा एक ढालू छप्पर बनाते हैं। उसे एक कुकुरमुत्ता के छत्ते या मनुष्य के खुले छाते का रूप देते हैं। वे इसे इस प्रकार अवस्थित रखते हैं कि यह वृक्ष के तने तथा दो-एक शाखाओं द्वारा अवलंबित रहता है। यह छप्पर इतनी सावधानी से तैयार हुआ रहता है कि जल से सर्वथा अभेद्य होता है। इस आश्रय-स्थल के नीचे बया का प्रत्येक जोड़ा अपना-अपना पृथक घोंसला बुनकर लटका लेता है। इन सभी व्यक्तिगत नीड़ों का मुख अधोवर्ती होता है और वे

इतने अधिक निकट एक दूसरे से दबे हुए होते हैं कि नीचे से उस रचना को देखने पर पृथक विभाग नहीं पहचाने जा सकते। दर्शक

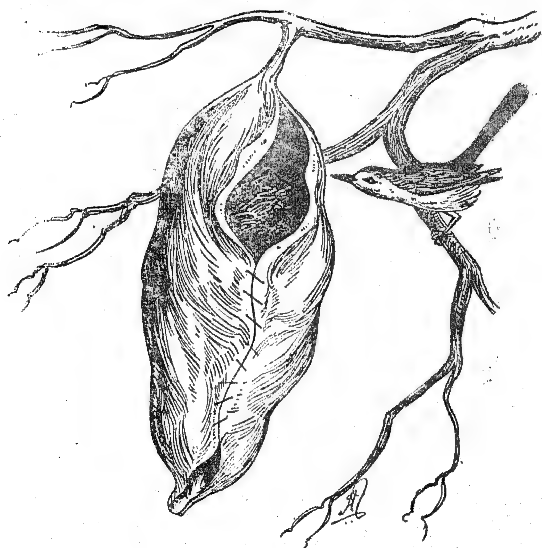


संघजीवी बया का घोंसला

को एक लटका हुआ मंच सा दिखाई पड़ता है जिसमें अगणित छिद्र होते हैं। प्रत्येक छिद्र एक स्वतन्त्र नीड़ का निम्नवर्ती द्वार होता है।

जब तक उस छप्पर के नीचे थोड़ा स्थल भी होता है, नए बया के जोड़े बनकर अपना स्वतन्त्र घोंसला उसी में जोड़ लेते हैं किन्तु कुछ समय में पूर्ण स्थान घिर जाता है। अतएव कुछ बया उसी जङ्गल के किसी दूसरे वृक्ष में जाकर इसी प्रकार का सामूहिक उपनिवेश स्थापित करते हैं। एक-एक संघबद्ध नीड़-उपनिवेश कई वर्षों तक उपयुक्त होता रहता है।

कुछ पक्षी ऐसे हैं जिन्होंने अपनी कुशलता से नीड़ बनाने की कठिनाई सुलझा ली है। सिलाई एक ऐसी सुन्दर कला है जो



दर्जी पक्षी का घोंसला

पक्षियों को भी नीड़निर्माण में प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती जान पड़ती है। दर्जी या सूचिक पक्षी इस कला का सुन्दर प्रदर्शन कर

दिखाते हैं। सूचिक पत्ती (टेलर बर्ड) का वैज्ञानिक नाम ओर्थो-टोमस लांगिकौडा है। अन्य जातियों के पत्ती भी इस कला से अवगत जान पड़ते हैं। वे अपना घोंसला एक बड़ी पत्ती के अंतर्गत ही निर्मित करते हैं। उस पत्ती को वे इसी लक्ष्य के लिए चुनते हैं। पत्ती के दोनों छोरों के किनारे-किनारे वे छेदों की दो पंक्तियाँ बनाते हैं। इसके बाद वे एक दृढ़ सूत्र एक ओर से दूसरी ओर तक एकान्तर रूप से उन छेदों में प्रविष्ट करते हैं। यह पत्ती पहले तो चपटी रहती है किन्तु वे तुरही या शृंग रूप में बना लेते हैं और उसी के मध्य घोंसला कपास सूत्र या बाल से बुन लेते हैं। इस सिलाई तथा बुनाई के पहले ही सूत की कताई आवश्यक होती है। इसके लिए सूचिक (दर्जी) पत्ती अपनी चोंच से मकड़े का जाला, कपास या ऊन के फाहे कात और ऐंठ कर सूत्र बना लेता है। वैज्ञानिकों ने देखा है कि सिलाई में प्रयुक्त करने पर इस सूत्र के सिरों पर गाँठ लगाई गई होती है। इन जटिल कार्यों में सब कठिनाइयों को पार कर लेने में सूचिक पत्ती ने जो सफलता प्राप्त कर ली है उसके लिए उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता।

कुछ मकड़े सिलाई का कार्य करते तो कहे जा सकते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे पत्तों में छेद कर उनमें तागे पिरो कर पत्तों की सिलाई करते हैं। फिर भी वे पत्तों पर ऐसी क्रिया करते हैं कि उसे सिलाई छोड़कर दूसरा कुछ कहना कठिन है।

अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि ये सब कौशल के कार्य जाति भर के जन्तुओं में निर्धारित तथा अटल गुण नहीं होते हैं। कुछ पत्ती ऋतुपरिवर्तन के अनुकूल अपनी नीड़-निर्माण-कला परिवर्तित कर देते हैं। उदाहरण रूप में क्रासबिल (लोक्सियो टीनियोप्टेरा) पत्ती स्वीडेन में उन्हीं ठीक नियमों तथा नमूनों के

अनुरूप नीड़ नहीं बनाता जैसा फ्रांस में बनाता है। यह प्रत्येक ऋतु में नीड़ निर्माण करता है। शीत-ऋतु में बना इसका घोंसला वर्तुलाकार होता है तथा बहुत सूखे लिचेन (अलगा वनस्पति तथा फफूँदी के संयुक्त रूप का पदार्थ) द्वारा बना होता है। उसका आकार भी बहुत बड़ा होता है। उसमें एक बहुत ही छोटा द्वार होता है जिसमें केवल यह पक्षी ही प्रवेश कर सके। छोटे छिद्र रूप के द्वार के कारण शीत से रक्षा का वह अच्छा साधन होता है। ग्रीष्म-ऋतु का घोंसला बहुत छोटा होता है। उसकी दीवालें इसी कारण बहुत पतली होती हैं। शीत द्वारा भीतरी भाग में कष्ट पहुँचने का भय भी नहीं होता। इस कारण दीवाल मोटी करने की आवश्यकता नहीं होती। इस कारण उसे बोझिल बनाने का व्यर्थ कष्ट वह नहीं उठाता।

बाल्टीमोर पीलक (कांचन) पक्षी यह विधि जानता है कि किस प्रकार बाह्य परिस्थितियों के अनुकूल नीड़-निर्माण किया जाय। यह उत्तरी अमेरिका के उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों में पाया जाता है। दक्षिणी राज्यों में तो इसका नीड़ कोमल पदार्थों के शिथिल रूप के संयोग से बना होता है जिससे भीतर सहज हवा आ-जा सके। उसमें गर्म वस्तुओं का अस्तर भी नहीं दिया होता। उसका द्वार पश्चिमाभिमुख होता है जिससे सूर्य की किरण केवल संध्या को ही भीतर प्रवेश करती हैं। इसके विपक्ष उत्तरी राज्यों में नीड़ निर्माण की दूसरी अवस्था होती है। वहाँ पर नीड़ों का मुख दक्षिण ओर होता है जिससे सूर्य की धूप भीतर पहुँच कर गर्मी पहुँचा सके। दीवालें भी मोटी होती हैं। उनमें झिलमिली रूप नहीं होता। भीतर अधिक से अधिक गर्म तथा नर्म वस्तुओं का अस्तर दिया होता है। एक ही क्षेत्र में भी घोंसलों के नमूनों में भेद हो सकता है। उनकी रूप-रेखा, स्वच्छता, तथा बनाने वाले पदार्थों

में भिन्नता देखी जाती है। बाल्टीमोर पीलक के घोंसले में प्रायः रेशम तथा सूत के टुकड़े इतने दृढ़ रूप में मढ़े पाये जाते हैं कि उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता। योरोपियनों के अमेरिका में जा बसने के पूर्व ये पदार्थ वहाँ नहीं सुलभ हो सकते थे। अतएव यह स्पष्ट है कि पीलक में सर्वोत्तम पदार्थ ढूँढ़ कर अपने नीड़-निर्माण में प्रयुक्त करने का कौशल है।

इस तरह की कितनी ही बातें उल्लिखित की जा सकती हैं जिनसे सिद्ध हो सकता है कि इस जाति में अटल अंतर्वृत्ति नहीं होती। प्रत्येक पक्षी वंशानुगत रूप में अंतर्वृत्ति की कुछ परम्परा रख कर भी पूर्वजों की पद्धति में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकता है। इसमें वह अपनी अनुभूति तथा विवेक बुद्धि का प्रयोग कर ही प्राचीन परम्परागत पद्धति में परिवर्तन उपस्थित करता है।



कागज द्वारा गृह-निर्माण

जन्तुओं द्वारा गृह-निर्माण के जो तीन स्थूल विभाग किए गए हैं उनमें विवर-निर्माण तथा वस्तु-संचयन या सिलाई, बुनाई आदि की दो मुख्य विधियाँ ज्ञात ही हैं, परन्तु तीसरी विधि इन सब से विभिन्न रूप की यथार्थ शिल्पीय या राजगीरी की रचना होती है। राजगीरी कला द्वारा वे ही जन्तु अधिक सुन्दर रचना कर दिखलाते हैं जो संघजीवी होते हैं, परन्तु एकाकी-जीवी जन्तुओं की भी रचना सुन्दर हो सकती है। संघजीवी जन्तुओं की रचना में यह सुविधा होती है कि एक इकाई की रचना में ही अनेक कारीगर या श्रमिक हाथ बँटाते हैं और श्रम-विभाजन द्वारा कार्य हो सकता है। अतएव हमें कोई बड़ी इकाई की रचना अधिक दर्शनीय प्रतीत हो सकती है।

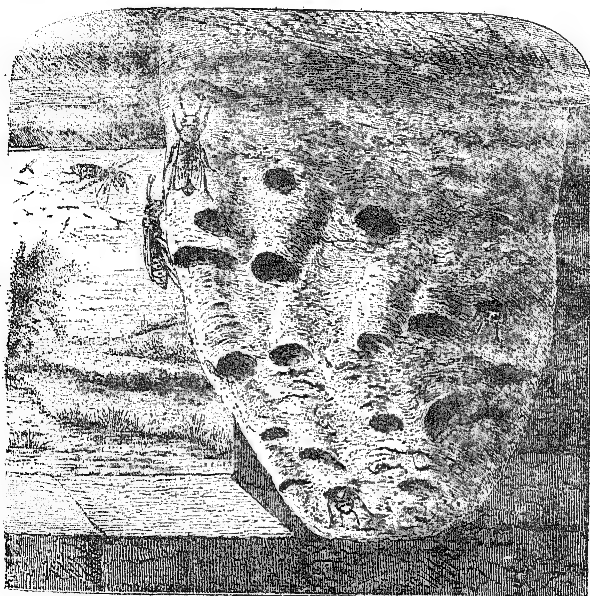
जन्तुओं द्वारा राजगीरी युक्त गृह-निर्माण का मूल तत्व यह है कि वे प्रायः पंकिल आधार या गीली मिट्टी को गारा या लोंदा बनाकर निर्मित होते हैं। जिस प्रकार हमारे कच्चे मिट्टी के घर गीली मिट्टी के लोंदे रखते जाने से ही उसके सूख जाने पर एक दृढ़ भित्ति युक्त हो जाते हैं उसी प्रकार जन्तु भी अपने चंचु या मुख से मिट्टी के गीले भाग को पाकर या सूखी मिट्टी में ही अपनी लसिका का मिश्रण कर अर्द्ध आर्द्र रूप बना कर छोटे-छोटे लोंदे से अभीष्ट ढंग की नीव, दीवाल तथा छत की रचना करते हैं। वह ही सूख कर कड़ी रचना हो सकती है। उनकी लसिका में ऐसे रासायनिक

द्रव हो सकते हैं कि उसके संयोग से सिंचित मिट्टी या पदार्थ का सूखा रूप विशेष टिकाऊ और पुष्ट हो जाय। केवल मिट्टी को छोड़ कर अन्य शिथिल या चूर्णीय अथवा क्षुद्रखंडीय पदार्थ भी लसिका द्वारा एकत्र जमा कर दृढ़ रचना का उसी प्रकार उदाहरण उपस्थित कर सकते हैं जैसे सिमेंट, बालू, कंकड़ आदि के संयोग से आधुनिक इंजीनियर री-इनफोर्स्ड कांकरीट की पुष्ट दीवालें, गचें, (पक्की फर्श) छतें आदि बना लेते हैं। इस तरह की कला के कई उदाहरण जन्तुओं की कारीगरी के गृहनिर्माण-कौशल में पाए जाते हैं।

कुछ बर्रे या ततैया अपना गृहनिर्माण जापानी घरों की तुलना में बनाती हैं। जापान में भूकंप से बचने के लिए हल्की रचना के लिए कागज या मोटी दफ़्ती से ही दीवालों या कमरों के विभाजक पर्दों का काम लिया जाता है। ततैया भी अपने कौशल से ऐसी कागजी रचना कर लेती है। परन्तु प्रशंसा की बात यह है कि वह किसी कागज या दफ्ती (बोर्ड) बनाने वाले मानवीय कारखाने की सहायता अपेक्षित नहीं रखती। वह तो आवश्यकता के स्थल पर तुरन्त ही कागज या दफ़्ती का निर्माण भी करती जाती है और उससे गृहनिर्माण भी करती जाती है। यह दफ़्ती बड़ी पुष्ट तथा दृढ़ अवलंब होती है। वह कुछ ताप-निरोधक भी होती है जिससे गृह के भीतर तापमान एक-सा रहता है। बाह्य ऋतुविषमता का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता। ये कीट मधु-मक्खियों समान रेखा-गणितीय ढाँचे पर तो गृह निर्माण नहीं करते किन्तु उसकी रोचकता न्यून नहीं होती। उनके गृहकोष्ठकों की दीवाल तुरन्त ही कागज की रचना कर बनती जाती है। सभी प्रकार के कूड़ा-कबाड़ इस रचना में प्रयुक्त होते हैं। काठ के छोटे छीलन, बुरादे या किसी भी अन्य वस्तु का उपयोग संभव होने पर किया जाता है।

इस कार्य में सहायता करने के लिए इस झिल्लीपंखीय जंतु

में एक विशेष अंग नहीं होता। केवल लसिका (थूक) से ही वह कूड़ा-कबाड़ों, छीलनों या बुरादों को एकत्र चिपका देता है। वही उसके गृह की दीवाल, छत आदि बनाने की पतली कागजी चादर-सी बन जाती है। यह गृहनिर्माण पहले एक मादा द्वारा ही प्रारम्भ होता है। अपनी सीमित शक्ति से ही ऐसा विशेष कागज बना कर वह कोष्ठकों को बनाना उस समय तक एकाकी जारी रखती है जब तक कि उसके अंडे से शिशु का प्रथम जन्म नहीं हो जाता। उसके



हड्डे का घोंसला

बाद तो एक के बाद एक उत्पन्न होने वाली बहुसंख्यक सन्तानें ही गृहनिर्माण कार्य को अग्रसर करने का भार अपने ऊपर लेती हैं।

कुछ समय में ही एक विशाल छत्ता बन जाता है जिसमें अगणित कोष्ठक बने होते हैं। किसी वृक्ष की शाखा से लटकता हुआ छत्ता इन जन्तुओं के श्रमदान तथा कौशल का ही परिणाम होता है। कागजी स्तर से गृह की समस्त रचना करने वाले इन जन्तुओं में 'वेस्पा, सिलवेस्ट्रिस' या अन्य जातियों की ततैया होती है। हड्डे का छत्ता भी इसी तरह का बना होता है।

कागज का निर्माण पहले चिथड़ों से होता था जो मुख्यत: कपास या छालटीन के रेशों से बना होता है। अब कागज काठ, बाँस या कुछ विशेष घासों की लुगदी से ही भारी पैमाने पर बनाया जाता है, परन्तु मनुष्य का यह आविष्कार बहुत अधिक पुराना नहीं कहा जा सकता। प्राचीन काल में भी चीनी लोग जो हाथ द्वारा थोड़ा बहुत कागज बना लेते थे, वह कुछ हजार वर्षों पुरानी कहानी ही कही जा सकती है। परन्तु नन्हें कीट अपनी आवश्यकता के लिए किसी भी प्रकार की सीख पाए बिना ही कितने समय से कागज निर्माण करने का उदाहरण रखते आए हैं। ततैया को तो मनुष्य के कागज बनाने के आविष्कार के बहुत अधिक पहले से कागज बनाने की कला जानने का श्रेय कभी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वे हमारे साधारण कागज तथा स्याहीसोख कागजों की तरह दो प्रकार के विभिन्न कागज बनाना जानती हैं। जब उनका गृह भूमि के अन्दर विवर में बना होता है तो उनका कागज काठ के रेशों से ही लुगदी रूप में परिवर्तित कर बना होता है। वहाँ उन्हें वर्षा से रक्षित स्थान सुलभ होता है, परन्तु जहाँ उनका गृह खुले स्थान में होता है जहाँ आँधी-पानी का प्रभाव पड़ सकता है वहाँ ततैया एक रक्षक लेप (रोगन) का प्रयोग करती है। उसके लेप से वर्षा का पानी दीवाल को विद्ध नहीं कर सकता। कुछ जातियाँ पुष्ट दफ्ती भी बनाना जानती हैं।

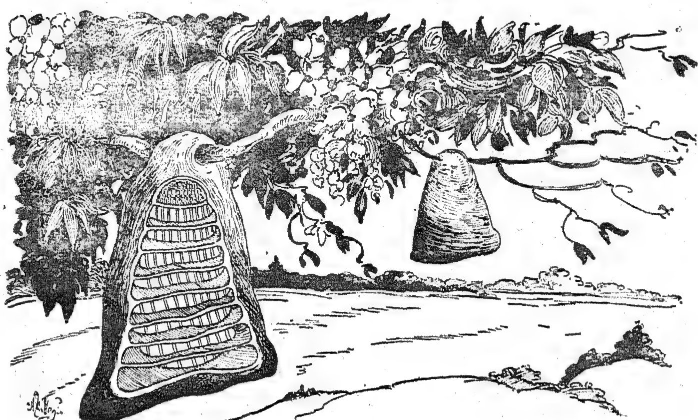
ततैया कागज तथा दफ्ती दोनों का ही प्रयोग गृहनिर्माण में करती है। उसमें प्राय: एक बाह्य आवरण होता है जिसके भीतर मधुमक्खी के कोष्ठकों की भाँति बहुभुजीय कोठरियाँ बनी होती हैं। मादा ततैया पहले छत्ता बनाने का कोई उपयुक्त स्थल ढूँढ़ती है। उसके 'जबड़े दृढ़ होते हैं। श्रमिकों में भी दृढ़ जबड़ों की व्यवस्था होती है। जबड़ों के किनारे दाँतेदार होते हैं जो जबड़ों के जुटने पर एक दूसरे के साथ जकड़ सकते हैं। उनका छत्ता बनाने का यही मुख्य उपकरण (हथियार) होता है।

अपने प्रबल तीखे जबड़ों से ही ततैया बरसात में पानी खाए काठों तथा छालों के रेशे नोच लेती है। उनकी छोटी गोली बना लेती है और मुख में दबा कर छत्ते के स्थल तक उड़ भागती है। किसी पुरानी खिड़की या इहाते के खंभों पर ततैया को जबड़ा फैलाकर काठ में प्रवेश करते देखा जा सकता है। वह कागज बनाने के उद्योग के लिए सामग्री-संचय का पहला कार्य होता है। इंच के बारहवें भाग बराबर लम्बा खण्ड नोच कर वह कुतर-कुतर कर पतले रेशों के रूप में बना लेती है। अन्त में उसमें लसिका का मिश्रण कर लुगदी बना लेती है जिससे वह छोटा गट्ठर सहज ही छत्ता बनाने के स्थान तक वहन किया जा सके। वहाँ पहुँच कर उसे फिर मर्दित करती है और तह रूप में फैलाती है। उस पर जीभ से चिकनाहट उत्पन्न करती है। लसिका का लेप लगने से यह कुछ सीमा तक जल-अभेद्य वस्तु बन जाती है।

'वेस्पा वलोरिस' नामक ततैया के घोंसले में यह देखा जाता है कि उसमें पृथक-पृथक मंजिलें (अट्टालिका) ही होती हैं, जिन्हें एक-एक छत्ता भी कह सकते हैं। एक घोंसले में एक या अनेक अट्टालिका हो सकती है। एक अट्टालिका की रचना कोष्ठकों की इकहरी तह से हुई होती हैं जिसमें बहुभुजीय कोष्ठक एक दूसरे से

सटे तथा अधोमुखी होते हैं। एक अट्टालिका दूसरी अट्टालिका से स्तम्भों द्वारा आबद्ध होती है। सब से ऊपरी अट्टालिका घोंसले के सब से ऊपरी भाग पर होती है या किसी वृक्ष की शाखा, लट्ठे या अन्य आधार से लटकी हो सकती है।

घोंसले का ऊपरी आवरण भी बना होता है जो पहले इकहरी तह का ही होता है। परन्तु बाद में अभ्रक की तहों की तरह पतली



ततैया का शाखावलम्बी घोंसला

तहों रूप में जुटा होता है। उसका आकार सीप के पुट की तरह उन्नतोदर होता है। उसका उन्नतोदर भाग बाहर की ओर निकला होता है।

पहली तह में अन्य उन्नतोदर तहें उसी प्रकार जुटाई जाती हैं जैसे खपरैल को एक दूसरे के किनारे पर कुछ चढ़ाकर छाजन तैयार की जाती हैं। इस तरह की रचना में छिद्रों के मध्य हवा भी रहने से भीतरी भाग में तापमान का शीघ्र परिवर्तन नहीं होता।

जब घोंसला बड़ा हो जाता है तो उसके बाहरी आवरण को अधिक पुष्ट किया जाता है। वह आधे इंच से लेकर एक इंच तक मोटा बन जाता है। उसमें कागज की दस तहें सम्मिलित हो सकती हैं। साथ ही भीतरी भाग की कुछ तहें नोच ली जाती हैं जिससे कुछ अधिक कोष्ठक बनाने की जगह निकल आवे। एक अट्टालिका को सपाट रूप में पूर्णतः दूसरी अट्टालिका से सटा हुआ नहीं रक्खा जाता। जहाँ-तहाँ छोटे स्तम्भों द्वारा ही वे परस्पर आबद्ध रक्खी जाती हैं। इस कारण दोनों के मध्य यथेष्ट अन्तराल रहता है जिसमें ततैया को एक अट्टालिका से दूसरी अट्टालिका तक जाने के लिए मार्ग सुलभ हो।

ततैया का घोंसला भूमि के भी अंदर छछूँदर, मैदानी चूहे या अन्य जंतुओं के त्यक्त विवरों में बना होता है। पुरानी दीवालों में भी घोंसला बनाना पसंद करती हैं। खोखले वृक्ष, या छप्परों, छतों लट्ठों आदि के नीचे भी छत्ता बना लेती हैं। मधुमक्खी के पुराने छत्ते पर भी अधिकार जमाती और मधु खाकर पुष्ट होती है। कुछ खुले स्थान में भी छत्ते बना लेती है।

ततैया का छत्ता जहाँ भूमि के अन्दर बना होता है, वहाँ उसकी वृद्धि के लिए विशेष खुदाई की आवश्यकता होती है। इसके लिए श्रमिक ततैया को जबड़ों में मिट्टी के कण लेकर बाहर कुछ दूर उड़कर गिराते देखा जा सकता है। परन्तु खुदाई में पथरीले टुकड़े मिलने पर भी ततैया उसे निकालने या हटाने का यत्न कर लेती है। वह अपने शरीर के भार के दुगुने बोझिल प्रस्तरखंडों को भी बाहर उठा लाती है। चूने के पत्थरों वाली भूमि में कड़े पथरीले टुकड़े मिलने पर ऐसा श्रम करना आवश्यक हो जाता है। जो पथरीले टुकड़े उनके शरीर के दूने भार से भी बोझिल हों उन्हें भूमि पर ढकेल कर ही वह घोंसले के बाहर पहुँचाती है जहाँ ऐसे कूड़े की

ढेर से विवर का छिद्र छिप-सा गया होता है। जो पथरीले ढोंके ढकेलने योग्य भी नहीं होते, उन्हें नीचे से खुदाई कर नीचे ही धसा दिया जाता है।

'पोलीबिया' प्रजाति के झिल्लीपंखीय कीट विचित्र रूप का छत्ता बनाते हैं। वह दफ्ती समान वस्तु के इकहरे आवरण में ग्रथित छत्तों का समूह होता है। वह किसी पौधे के तने या वृक्ष की शाखा



पोलीबिया

से प्रायः आवद्ध होता है। इन घोंसलों का आकार कई प्रकार का हो सकता है। कहीं तो नलिकाकार होता है। कहीं शंक्वाकार हो सकता है। कहीं वर्तुलाकार (खोखले गेंद समान) या कहीं घंटी-नुमा हो सकता है। एक छोटे छिद्र द्वारा घोंसले के अन्दर जाने

का मार्ग होता है। उस आवरण में कोई दूसरा मार्ग नहीं होता। कभी-कभी बाहरी दीवाल प्रत्येक अट्टालिका की ऊँचाई पर कुछ गढ्ढे युक्त होती है।

दक्षिण अमेरिका में उरुगाय तथा अर्जेंटाइना में 'पोलीबिया स्क्युटिलारिस' नामक कीट होता है। उसका घोंसला प्रायः दो फुट लम्बा होता है। उसका घेरा एक गज से अधिक गोलाई में होता है। उसका दफ्ती का आवरण बनावट में मोटा और बड़ा पुष्ट होता है किन्तु उसका तल इतना सपाट तथा चिकना होता है कि उस पर लिखा जा सकता है। उसका रङ्ग भूरा होता है। कहा जाता है कि इसका निर्माण 'टापिर (एक शूकरनुमा मुख का स्तनपोषी जंतु) के मल द्वारा होता है।

इसके घोंसले के अन्दर ही दृढ़ता के लिए डालें प्रविष्ट रक्खी जाती हैं। उसमें डाल के ऊपर वाले भाग के कुछ छत्ते वर्तुलाकार होते हैं और एक केन्द्रीय गोलों रूप में व्यवस्थित होते हैं किन्तु नीचे वाले भाग में गोले का खंड रूप या गोल ढक्कन का रूप होता है। सबसे नीचे वाले छत्ते ढालनुमा होते हैं। प्रत्येक छत्ते के पार्श्व में एकाकी द्वार होता है। यह क्षुद्र ततैया मधुसंचय वृत्ति रखती है। अतएव इस पर मधुलोभी जंतुओं का प्रहार भी होता है। बाहरी तल से अव्यवस्थित आड़ी पंक्तियों में दफ्तियों के अर्बुद तथा काँटे से निकले होते हैं। उनमें प्रत्येक पंक्ति किसी भीतरी छत्ते का ही बढ़ा हुआ-सा अंश होती है। इन उभाड़ों का निर्माण बड़ी घनी दफ्ती की तहों के ऊपर ही तहें जमाते जाने से हुआ रहता है। वे बड़े ही पुष्ट होते हैं। वे प्रायः अनेक बिडालवंशी हिंसक जन्तुओं के प्रहार से रक्षा करने के विधान होते हैं। पोलीबिया प्रजाति की इस मधुसंचयिनी ततैया के छत्ते पर अमेरिकी व्याघ्र, जगुआर लोभ की दृष्टि रखकर प्रहार करता है और छत्ते

तोड़कर मधुपान कर लेता है। वे छत्तों को डाल से तोड़कर पृथक् कर दिया करते हैं।

पोलीबिया प्रजाति में ही 'लिलियासिया' जाति की ततैया होती है। उसका छत्ता तो इसी प्रजाति की उपर्युक्त मधुसंचयिनी जाति (स्क्यूटेलारिस) ततैया के छत्ते से भी बड़ा होता है। नीचे के भाग में अतिरिक्त कोष्ठकों के निर्माण से उसकी लम्बाई ४० इंच तक पहुँचती है। इसका आवरण दृढ़ तथा मोटा होता है। उसका तल चमकीला होता है किन्तु इतना भद्दा और खुरदरा होता है कि उस पर लिखना सम्भव नहीं हो सकता। घोंसला चपटा तथा लम्बोतरा गोला होता है और ऊपरी सिरे की एक अँगूठी द्वारा किसी पुष्ट डाल से लटका रहता है। इसमें चपटे अंडाकार छत्ते एक दूसरे के ऊपर बहुसंख्यक बने होते हैं। इनकी रचना बाह्य आवरण की अपेक्षा अधिक ध्यान तथा प्रवीणता से की होती है क्योंकि वे भंजनशील होते हैं, परन्तु अधिक घने होते हैं और विशेष बारीक पदार्थ से बने होते हैं। एक छत्ते में जाने के लिए मध्य में छिद्र बना होता है। एक दूसरी ततैया 'पोलीबिया सेडूला' अपने छत्ते का आकार बदलकर उन पदार्थों के अनुरूप ही रखती है जिनमें वे आबद्ध होते हैं। किसी एकदलीय वनस्पति के पत्ते अधोतल में लटका होने पर उसका घोंसला लम्बा और पतला होता है, परन्तु द्विदलीय वनस्पतियों के अधिक चौड़े तथा अधिक गोल पत्ते के नीचे बना होने पर वह वैसा ही अधिक गोल बना होता है। इसके षट् पहल कोष्ठक की परत या दूसरी काष्ठीय सी तह बनी होती है, जो वृक्ष की बाह्य त्वचा सी मानी जा सकती है।

पोलीबिया प्रजाति के एक कीट की रचना गोलों की लम्बी नाली सी होती है जिसमें एक गोल कोष्ठक में दूसरा कोष्ठक पिरोया सा होता है। इसे वह बढ़ाता भी जाता है जिसके लिए एक कोष्ठक

की बाहरी दीवाल पर दूसरे कोष्ठक की इस तरह रचना करता जाता है कि एक की छत दूसरे कोष्ठक की फर्श बनती है।

गाइना, ब्राजील तथा मेक्सिको में एक झिल्लीपंखीय कीट 'चारटेरगस चारटेरियस' नाम का होता है। इसके घोंसले की रचना में पुष्टता तथा सौष्ठव में सर्वोत्तम दफ्ती प्रयुक्त होती है। उसका रंग उजला सा होता है। रूप लम्बोतरा होता है। घोंसला नीचे की ओर क्रमशः चौड़ा होता जाता है जिसमें सदा नए छत्ते जोड़े जाते रहते हैं किन्तु पहले के बने छत्ते सदा पूर्ण और आत्म-पूरित होते हैं। उनमें कभी भी कोई नई अट्टालिका किसी प्रकार के परिवर्तन किए बिना ही जोड़ी जा सकती है। यह किसी शाखा से ऊपरी छोर पर एक दफ्ती की चौड़ी अँगूठी से लटका होता है। भीतरी भाग एक दीवाल से दूसरी तक विभाजक पर्दों द्वारा कोष्ठकों रूप में बटा होता है। ये दीवाल के साथ ही संलग्न रूप के होते हैं। इस भव्य छत्ते की रचना में पुष्टता और हल्केपन के गुणों का बड़ा सुन्दर मेल होता है। इसका तल कठोर तथा चिकनाया होता है। वह पूर्ण जल-अभेद्य होता है। इसमें लगा पदार्थ इतना टिकाऊ होता है कि कीटों द्वारा छत्ते का उपयोग लगातार कई वर्ष तक आनन्दपूर्वक किया जा सकता है।

कागज द्वारा गृह-निर्माण का ठेका ततैया जाति के कीटों को ही नहीं मिला होता। अन्य जन्तु भी ऐसी कुशलता दिखाकर अपना गृह बनाते हैं। इस कला में दीमकें भी उल्लेखनीय प्रवीणता दिखलाती हैं। दीमकें श्वेत रंग की होती है और उनका आकार चीटियों सा होता है किन्तु वे चीटियों से सर्वथा भिन्न श्रेणी की होती हैं। उन्हें टिड्डे, झींगुरों, तेलचट्टों के अधिक निकट का जन्तु कह सकते हैं। कुछ दीमकें वृक्षों में भी रहती हैं और वे एक प्रकार का कागज बनाने में बड़ी प्रवीण होती हैं किन्तु वह कागज ततैया

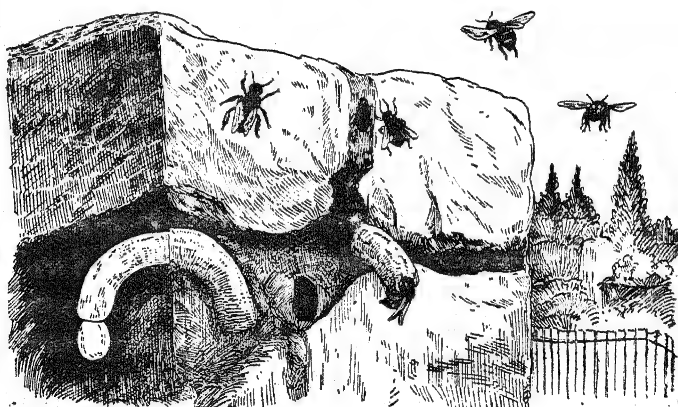
द्वारा बनाए कागज से कुछ विभिन्न रूप का होता है। काठ को लुगदी रूप से परिवर्तित कर देने के बाद दीमकें उसमें एक प्रकार का चिपकन पदार्थ मिश्रित करती हैं जो उनका विसर्जित मल ही होता है। यह एक प्रकार का सीमेंट सा पदार्थ होता है जिसे जन्तु कभी-कभी ही प्रयोग करते पाए जाते हैं।

वृक्षचारी दीमकों में सबसे प्रसिद्ध 'टर्मीज अर्बोरम' होती है। यह दक्षिणी अफ्रीका (आशा अंतरीप) तथा पश्चिमी अफ्रीका तथा अन्य स्थानों में पाई जाती है। ये जन्तु वृक्षों पर बड़ी ऊँचाई पर अपने घोंसले बनाते हैं जो भूमि से ८० या १०० फुट ऊँचाई पर हो सकते हैं। घोंसलों की रचना कभी तो शाखा-स्कंधों में होती है और कभी एक ही डाल को घेर कर होती है। घोंसलों का आकार वर्तुलाकार या अंडाकार होता है। उसका रंग काला होता है। आकार भी बहुत बड़ा हो सकता है। काठ के टुकड़ों में अनेक प्रकार के स्निग्ध पदार्थों का मिश्रण कर लेई बनाकर विभिन्न आकार के बहुसंख्यक कोष्ठकों की रचना हुई होती है। वे इतने पुष्ट बने होते हैं और वृक्ष से इतनी दृढ़तापूर्वक आबद्ध होते हैं कि शाखा काटे बिना उन्हें पृथक कर सकना एक असंभव कार्य होता है। गाइना के तट पर, जहाँ भीषण अंधड़ का प्रसार प्रायः होता रहता है, वृक्ष प्रायः धराशायी हो जाया करते हैं किन्तु उन पर बना दीमकों का घोंसला अक्षत ही बना रहता है। एक घोंसले की दीमकें अगणित होती हैं। उन्हें धूप से बड़ा क्लेश होता है। अतएव वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए मिट्टी से आवृत मार्ग बनाती हैं। इस तरह के टेढ़-मेढ़े आवृत मार्ग उस शाखा के नीचे बहुतेरे मिल सकते हैं जिस पर उनका घोंसला बना होता है। वहाँ से वे मार्ग वृक्ष की उच्चतम फुनगियों तक पहुँचे होते हैं जो काले रंग के दिखाई पड़ते हैं। नीचे तने से होकर भूतल

तक भी उनका ढका मार्ग बना मिलता है। वहाँ से भूगर्भीय मार्गों से भी प्रायः उनका सम्बन्ध होता है। इन मार्गों द्वारा दीमकें सुविधापूर्वक अपने घोंसले तक खाद्य पदार्थ पहुँचाती हैं। ये दीमकें कभी घर के छप्पर पर घोंसला बना लेती हैं और भारी क्षति पहुँचाती हैं। उनसे रक्षा पाने का उपाय तो उन्हें तुरन्त ही नष्ट कर देना है। परन्तु दृष्टि से ओझल रूप में ही ये बहुत कुछ संहार कार्य कर चुकती हैं, तब यथार्थ स्थिति का पता लगता है। कभी-कभी तो सामान बंद किए बक्सों में ही इनका डेरा पड़ जाता है। वहाँ सब कुछ स्वाहा कर देती हैं, तब किसी दिन उसका पता चलता है। ये सूखे पेड़ों पर भी आक्रमण करती हैं जो अभी खड़ा ही रहता है। तने के निचले भाग में प्रवेश कर भीतर का सब कुछ काठ खा जाती हैं, केवल ऊपर की छाल ही शेष रह जाती है। ऐसा करने पर वे खोखले भाग को दृढ़ करने के लिए मिट्टी की दीवाल भीतरी भाग में बना लेती हैं, किन्तु जब भीषण आँधी का प्रकोप होता है तो इतना दुर्बल वृक्ष खड़ा नहीं रह सकता। वह धराशायी होकर टूक-टूक हो जाता है। कभी ऐसे वृक्ष पर चढ़ना भयानक हो सकता है, क्योंकि निचला भाग ही दीमक के खा जाने पर बिलकुल शक्तिहीन हो चुका रहता है, तो ऊपरी भाग आदमी के चढ़ने पर उतने बोझ को भी सँभाल नहीं सकता और मनुष्य को वृक्ष के साथ ही धरती पर लुढ़क आने और अंग-भंग करने का भय होता है या मनुष्य की दुर्भाग्यवश मृत्यु ही हो सकती है। जब सूखा वृक्ष भूमि पर गिरा रहता है तो उसका भीतरी भाग खाते रहने पर उसमें अवलम्ब के लिए मिट्टी की दीवाल बनाने की आवश्यकता दीमक को अनुभव नहीं होती। इस श्रम से वह बच जाती है।

मिट्टी द्वारा गृह-निर्माण

कुछ जन्तु कहीं गड्ढों, खोहों या दरारों में कुछ वस्तु का संयोग कर अपना गृह बनाते हैं। इनमें एकाकी-जीवी जन्तु भी होते हैं। "ऐथोकोरा पैरीटिना" एक छोटी मधुमक्खी होती है जो एकाकी-जीवी होती है। यह पुरानी इमारतों की दीवालों में रहना पसन्द करती है। उसकी दीवालों में कोई दरार ढूँढ़कर अपना आश्रय स्थल बनाती हैं। यदि कुछ अधटूटा गारा या चूना हो तो उसे गिराकर दरार को बड़ा बना लेती है। इसमें उसका निवास-स्थल

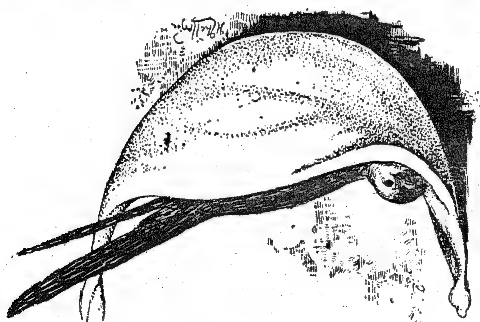


राजगीर मधुमक्खी का गृह

होता है। इसका द्वार एक नली रूप में पेंदे की ओर झुका होता है

और बाहर की ओर निकला रहता है। गृहस्वामी मक्षिका इस मार्ग से ही आती जाती है किन्तु धरातल की ओर झुका रहने के कारण भीतरी भाग वर्षा के पानी से सुरक्षित रहता है। साथ ही उसके शत्रु कीट भीतर प्रवेश नहीं पा सकते। शत्रु कीट उसके बाहर निकलने की बाट जोहते रहते हैं और उसके घोंसले में प्रवेश कर अपने अंडे वहाँ दे आना चाहते हैं। घोंसले का द्वार तथा प्रवेश मार्ग बालुका-कणों से निर्मित होता है जो मधुमक्खी द्वारा घोंसला-निर्माण में टूट-फूटकर उत्पन्न हुआ रहता है। इन बालुका कणों को स्निग्ध पदार्थ से चिपकाकर एकत्र करने से सूखने पर दृढ़ दीवाल बन गई होती है।

अबाबील छत के कोनों को मिट्टी का घोंसला बनाने के लिए चुनती है। उसे तीन ओर से दीवाल और छत का रक्षण प्राप्त होता है, अतएव केवल ऊपर से एक मेहराब नुमा तल बना लेना ही उसके लिए यथेष्ट होता है। उसके लिए वह तिनके के टुकड़ों या भूसे के साथ मिट्टी का प्रयोग करती है। इस रचना की चोटी पर



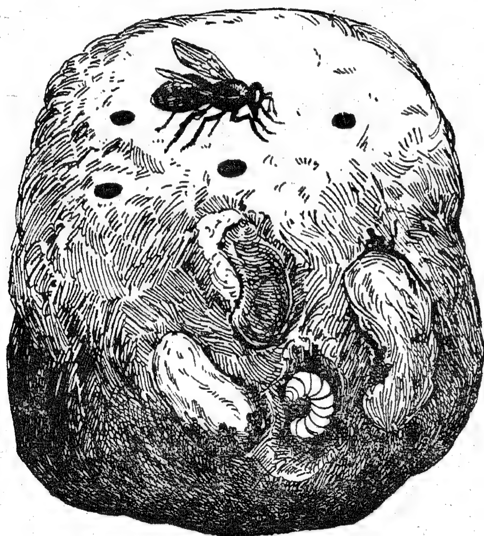
सिंहल अबाबील का घोंसला

आने-जाने के लिए एक छिद्र छूटा होता है। अबाबील ग्रीष्म काल

के निवास काल में शीत प्रदेशों में इसी घोंसले या स्वनिर्मित मृत्तिका गृह में कालयापन करती है। दूसरे वर्ष अन्य भूभागों में शीत ऋतु के प्रवास से लौटने पर वह उन पुराने गृहों में ही रहने का प्रयास करती है। इस तरह कई वर्षों तक ग्रीष्म काल में उसका एक स्थान के गृह में ही निवास हो सकता है। समय के चपेट से गृह के भग्न हो जाने पर ही वह दूसरी रचना वहीं या अन्यत्र करने के लिए विवश होती है। अबाबीलों के चङ्गुल में अँगूठी पहनाकर उनके पूर्व स्थान पर अगले वर्ष लौट आने का प्रमाण प्राप्त किया जा सका है। पुराने समय में अबाबीलों के घोंसले मकान के धुँएदानी (चिमनी) में बनने के उदाहरण पाश्चात्य देशों में पाए जाते थे। इसे आग के निकट का स्थान प्रिय होता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे ठीक भट्ठियों के ऊपर ही रहती होंगी। किन्तु चिमनी के कुछ ऊपर के भाग में गर्म धुएँ और भाप से बीच ही वे अवश्य रहती थीं। पाँच या छः फुट की निचाई पर ऊपरी छोर से प्रविष्ट कर चिमनी में घोंसला बनाती थीं। वह कीचड़ के साथ कुछ तिनकों के टुकड़े से मिश्रित पदार्थ से बनता था। यह ऊपर की ओर डलिया की तरह खुला मुख रखता था। भीतरी तह में कोमल घास, पर आदि का अस्तर होता था। चिमनी की पतली नली में ही वे दिन भर भली-भाँति प्रवेश करती तथा बाहर निकलती रहती थीं। जब कभी वे चिमनी के ऊपर उड़ती होतीं, उनमें डैनों का प्रकंपन भीतर की दबी हवा से संघर्ष कर बादल गरजने समान शब्द करता। मादा अबाबील शीत से बचत के अतिरिक्त उल्लू या अन्य पक्षी शत्रुओं से रक्षा पाने के लिए चिमनी के बंदी घर में अन्डा सेने की यातना सहन करती होगी। नए ढङ्ग की कुछ ढके मुख की चिमनियाँ बनने से वर्तमान काल में चिमनी के अन्दर घोंसला बनाने की सुविधा नहीं प्राप्त होती।

अपना घोंसला बनाने के लिए अबाबील अपनी चोंच में भर कर कोमल, चिपकनी मिट्टी लाती है। उसमें अपनी लसिका (थूक) का भी कुछ मिश्रण कर देती है जिससे वह सूखने पर कठोर रूप धारण कर लेती है। अकेली सूखी मिट्टी में इतनी दृढ़ता नहीं हो सकती। ऋतु अनुकूल होने पर पूरा घोंसला सप्ताह भर में पूरा हो जाता है।

एक राजगीर मधुमक्खी "चैलिकोडोमा" नाम से ज्ञात है। यह छत्ते वाली मधुमक्खियों की भाँति संघ-जीवी नहीं होती, बल्कि एकाकी रहती है। इसमें व्यक्तिगत कार्य-प्रेरणा तथा कौशल होता है। इसकी मादा ही क्रियाशीलता दिखलाती है। इसके



राजगीर मधुमक्खी चैलिकोडोमा का गृह

निर्मित कोष्ठ आठ या दस होते हैं जो नाना प्रकार के विचित्र

स्थलों में बने हो सकते हैं। कभी तो वे किसी पथरीले ढोके पर बने हो सकते हैं, कभी शाखा में बने हो सकते हैं, या किसी पत्थर की दीवाल पर ही निर्मित हो सकते हैं। कीट बारीक से बारीक मिट्टी एकत्र करता है, जैसे पैरों से रौंदी हुई मार्ग की धूल, और उसे अपनी लसिका (थूक) से सान लेता है। मिट्टी के इन लोंदों को वह बगल-बगल रखता जाता है जिससे कुछ समय में ही एक गुम्बजदार रूप बन जाता है। उसके छोर पर वह नई-नई मिट्टी जमाता जाता है। इस छिद्र को धूप शीघ्र ही सुखा देती है और दृढ़ता प्रदान करती है। जब कोष्ठक यथेष्ट ऊँचा बन जाता है तो यह कीट राज-गीरी का कार्य स्थगित करता है और पराग तथा मधु की खोज में फूलों की सैर करने लगता है जिससे अपने क्षुद्र कोष्ठक को मधु और पराग से पूर्ण कर दे। घोंसले को वापस जाता है। संचित किया हुआ मधु और पराग उसमें उँडेल देता है। फिर मैदानों में फूलों की खोज में पुनः चला जाता है। मिट्टी के कोष्ठक के मधु और पराग से पूर्ण न हो जाने तक इसी प्रकार कार्य जारी रखता है। खाद्य से पूर्ण कर उसमें एक अन्डा देता है तथा ऊपर से मुँह बन्द कर देता है। सब कोष्ठकों में यही क्रिया पूर्ण करता है।

चेलिकोडोमा आर्द्र मिट्टी को उसी प्रकार व्यक्त करता है जिस प्रकार कोई राजगीर मकान की दीवालों के पुराने प्लास्टर या निरर्थक चूने को प्रयुक्त नहीं करता। उसके लिए तो सूखी मिट्टी ही लसिका के साथ अधिक चिपकनी या सूखने पर दृढ़ हो जाने वाली हो सकती है। अपने इस सीमेंट के साथ वह कंकड़ियाँ भी प्रयुक्त करती हैं, जिससे कुछ श्रम में बचत हो जाय। वह अपने आकार की तुलना में बड़ी कङ्कड़ी चुनकर मिट्टी रूप के सीमेंट की दीवाल में उसके आर्द्र रहते ही धँसा देती है। उन कङ्कड़ियों को हम अपने

मकानों में प्रयुक्त होने वाले पथरीले ढोकों समान ही समझ सकते हैं। उन कङ्कड़ियों को वह एक-एक कर उपयुक्त रूप की ही चुनती है। जो अधिक कठोर तथा नोकीली कङ्कड़ियाँ होती हैं, उन्हें ही वह चुनती हैं जिससे मिट्टी में लसिका मिश्रित पदार्थ में डालने पर वे कङ्कड़ियाँ एक दूसरे को आश्रय देकर पूरी रचना को विशेष दृढ़ बना सकें। कङ्कड़ियों के मध्य यथेष्ट मिट्टी (लसिका मिश्रित) होती है जो उन्हें दृढ़ता से आबद्ध कर लेती है। इस तरह रचना का ऊपरी तल तो ऊबड़-खाबड़ सा ही रहता है, उसमें प्रयुक्त कङ्कड़ियों की नोकें निकली रहती हैं, परन्तु भीतरी तल यथेष्ट चिकना बना होता है, जिससे नवजात शिशुओं के कोमल अङ्ग क्षत न हो सकें। इसी कारण भीतरी तल पर लसिका-मिश्रित मिट्टी का भली-भाँति लेप किया होता है।

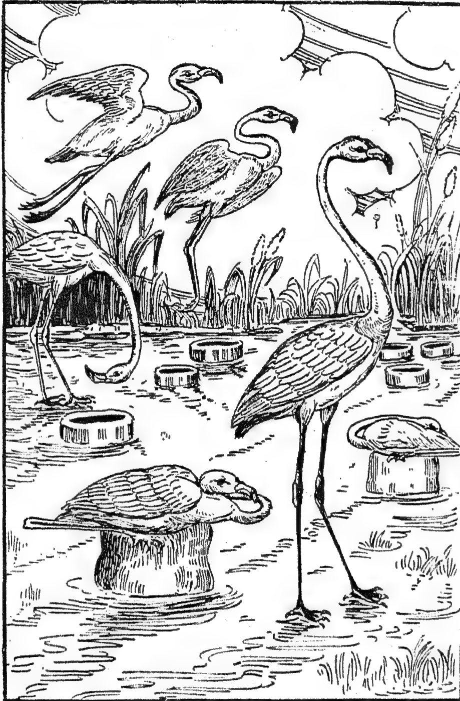
चेलिकोडोमा की लसिका-मिश्रित धूल तथा कङ्कड़ियों की बनाई रचना इतनी दृढ़ हो जाती है कि उसे तोड़ने के लिए लोहे के हथियार ही काम दे सकते हैं। इतनी दृढ़ रचना को वह प्लास्टर की हुई दीवाल या ईटों अथवा पत्थरों के मध्य प्रयुक्त मसालों के ऊपर नहीं बनाती, बल्कि पत्थर के ऊपर ही उसे निर्मित करती है। है। ऐसा स्थान न मिलने पर वह कोनों, चौखटों, आदि के उपयुक्त स्थलों को ग्रहण करती है जहाँ उसका गृह दृढ़ता से स्थित रह सके।

यह झिल्लीपंखीय कीट अपने कार्य में राजगीर की अनिवार्य वृत्ति प्रदर्शित करता है। वह कुछ दशाओं में अपनी अन्तर्वृत्ति में कुछ परिवर्तन कर लेता है। जब यह कीट अपना कार्य पूरा करने के समय कोई पुराना घोंसला देखता है, जो उजड़ा रहने पर भी परिष्कार करने योग्य होता है, तो वह उस पर बिना किसी हिचक

के ही अधिकार जमा लेता है और उसके गृहनिर्माण की अंत-र्वृत्ति का शमन हो जाता है। पहले जितना श्रम हो चुका होता है, उससे यह लाभ उठाता है और जहाँ-तहाँ छेदों की मरम्मत कर या टूटे भाग का फिर से निर्माण कर काम चलाता है। फिर उस परिष्कृत पुराने कोष्ठक को मधु से पूरित करता है और उसमें अंडा देता है। कुछ दशाओं में यह परिश्रम बचाने की और भी युक्ति करता है। ,यदि यह अपने को यथेष्ट बलिष्ठ समझता है तो अपने किसी सजातीय कीट के बने बनाए कोष्ठकों पर ही अधिकार जमाने के लिए उसके स्वामी का पीछा कर भगा देता है तथा कोष्ठकों में अपने अंडे देता है। पेंदे से ऊपरी सिरे तक कोष्ठक निर्मित करने के स्थान पर इसे केवल उसका शेष भाग ही पूर्ण करना पड़ता है। इस प्रकार के कार्य उनकी अन्तर्वृत्ति द्वारा झल-कती हुई भावना प्रकट करते हैं। नर चेलिकोडोमा का शरीर कुछ चमकीले रूप का लाल होता है किन्तु मादा का रंग मखमली काला होता है। उसके पङ्ख भव्य गहरे बैंजनी रङ्ग के होते हैं। मादा ही गृहरचना का कार्य करती है। उनका कंकड़ी का बोझ लेकर उड़ना एक दुष्कर कार्य ही होता है, फिर भी संतान-वृद्धि तथा रक्षा की भावना से विशेष पुष्ट गृह का निर्माण करने के प्रयास में सफल होते हैं।

बलाक (फ्लैमिंगो) पक्षी अर्द्ध जलमग्न स्थलों में रहता है। यह न तो भूमि पर ही अपने अंडे रख सकता है और न वृक्ष तक ही उसकी पहुँच होती है। इसके निवास-क्षेत्र में वृक्ष पाए ही नहीं जाते। अतएव यह मिट्टी का शंकुवत टीला बनाता है। वह सूख कर बहुत पुष्ट हो जाता है। उस शंकु के ऊपर खुली हवा में ही एक छिद्र बनाता है। यही उसका घोंसला होता है। इस टीले के ही ऊपर मादा अंडा सेने के लिए बैठती है जिसके पैर टीले के पार्श्व

में लटके होते हैं और उसका परिवार आर्द्रता तथा जल से रक्षित टीले के ऊपरी छिद्र में पड़ा रहता है।

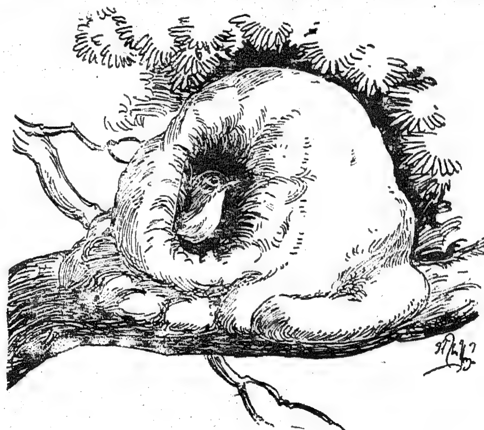


बलाक का गृह

ब्राजील तथा लाप्लाटा का भद्दा पक्षी (फरनेरियस रूफल) अत्यन्त चतुर राजगीर होता है। यह अपने अंडे सेने के लिए जो स्थान बनाता है वह भट्ठीनुमा ही होता है। इसलिए इसे भट्टी (ओवेन) पक्षी कहते हैं। यह बड़ा चतुर होता है और जानता है कि किसी झंझट के बिना मिट्टी का बुर्ज किस प्रकार तैयार किया

जाय। अपने कार्य के लिए एक बड़ी उभड़ी शाखा ढूँढ कर यह कुछ न कुछ वनस्पतियों से जुटे मिट्टी के डले लाता है और उनको संयुक्त कर एक सपाट चबूतरा बना लेता है। यह उसके शेष रचना कार्य के लिए मंच होता है। यह कर चुकने के पश्चात् आधार-स्थल रूप मंच सूखते रहते पर यह उसके ऊपर गारे का गोल घेरा कुछ बाहर की ओर झुका हुआ बनाता है। उसके सूख जाने पर वह उसे ऊपर उठाता है किन्तु अब उसका झुकाव भीतर की ओर होता है।

ऊपर के अन्य रद्दे भी अंतर्भाग की ओर ही झुके बनाए जाते हैं। इस रचना के बढ़ते जाने पर ऊपर के घेरे धीरे-धीरे छोटे होते जाते हैं। धीरे-धीरे घेरा बहुत ही छोटा बन गया होता है, उसे यह एक छोटे मिट्टी के गोले से बन्द कर देता है। उसमें वह कोई द्वार



भठ्ठी पक्षी का घोंसला

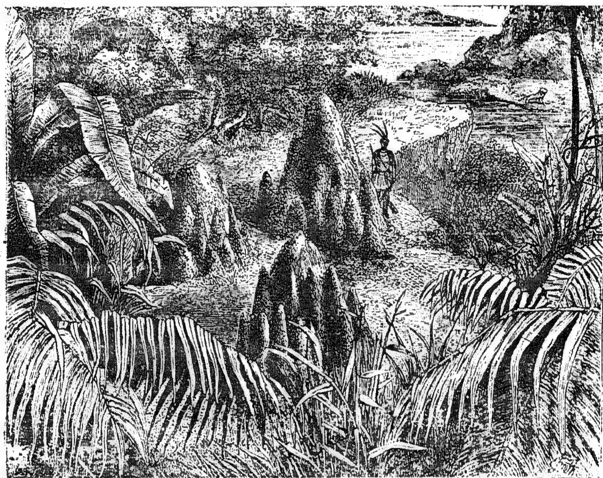
रख लेता है जिसका आकार अर्द्ध गोलाकार होता है किन्तु इतना ही यथेष्ट नहीं होता। भीतर वह दो विभाजन बना लेता है। एक

खड़ा होता है, दूसरा आड़ा जो एक छोटा कक्ष पृथक करता है। खड़ा विभाजन द्वार के एक किनारे से प्रारम्भ होता है। इस कारण बाहर की हवा सीधे भीतर नहीं जा सकती। इस प्रकार तापमान के घोर परिवर्तन से वह रक्षित रहता है। ऐसे कक्ष में मादा अंडे देती है और उसे सेती है। उसमें नीचे की ओर घासपात का गद्दा रखने की व्यवस्था पहले ही कर ली जाती है।

इस पक्षी के भट्ठीनुमा गृह का व्यास एक फुट होता है और कभी-कभी उसका बृहत आकार होता है। उसका भार चार-पाँच सेर होता है। उसे यदि डाल हिलने-डुलने से विशेष क्षति न पहुँचे तो दो-तीन वर्ष तक अक्षत रह सकता है। प्रति वर्ष एक नई भिट्टी पहली भट्टी के ऊपर बनाई जाती है। जिन संघबद्ध जन्तुओं में राजगीरी के उत्तम उदाहरण पाए जाते हैं, उनमें दीमकों का भी उच्च स्थान है। ये क्षुद्र जन्तु अपने आकार की तुलना में बहुत ही विशाल गृह निर्माण करते हैं। उनके साधारण गृहों के समक्ष मानव रचित बड़े-बड़े स्मारक भी तुच्छ माने जा सकते हैं। उनकी लेप की हुई मिट्टी से आवेष्ठित गृह का गुम्बज पाँच गज ऊँचा हो सकता है। इसका अर्थ हुआ कि उनके शरीर की लम्बाई से यह रचना हजारगुनी बड़ी होती हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध स्मारक ईफेल मीनार की ऊँचाई एक मनुष्य की औसत ऊँचाई का १८७ गुना ही है। वह ३२८ गज ६८४ फुट, ऊँची है किन्तु तुलनात्मक रूप में यदि दीमक को रचना से होड़ लेनी हो तो इसकी ऊँचाई १६०० गज होनी चाहिए। कुतुब मीनार की ऊँचाई २५० फुट ही है। उसे तो दीमकों की रचना की तुलना में बहुत तुच्छ ही कहा जा सकता है।

दीमक की सभी जातियाँ एक समान उद्योगकुशल नहीं होतीं। बेलिकोसस नाम की जाति गृहरचना कला को उच्चतम स्तर तक

पहुँचाती है। उसके संघ के सभी सदस्य एक आकार के नहीं होते। तीन श्रेणी के सदस्य होते हैं : (१) सैनिक जिनकी पहचान बड़ा सिर है तथा लम्बोतरा जबड़ा है जो शक्तिशाली पेशियों द्वारा संचालित होता है। इनका कर्त्तव्य सारे संघ की रक्षा करना होता है।



दीमक की बांबी या वल्मीक (ऊपरी दृश्य)

वे अपने ही आकार के जन्तुओं पर घातक प्रहार कर सकने में समर्थ होते हैं। वे मनुष्य को भी कष्ट पहुँचा सकते हैं। (२) श्रमिक—जो कारीगर तथा मजदूर का कार्य करते हैं तथा शिशु-पालन का भार वहन करते हैं। वे संघ में बहुसंख्यक होते हैं। (३) राजा और रानी।

प्रत्येक घोंसले या विवर में राजा रानी ही सन्तानोत्पादन कार्य के उत्तरदायी होते हैं। ये सन्तानोत्पादन के अतिरिक्त कोई भी अन्य कार्य नहीं करते। इन निठल्ले प्राणियों की देखभाल सैनिक

तथा श्रमिक ही करते हैं। भोजन भी इन्हें वे ही प्रदान करते हैं। राजा रानी दोनों ही पंखधारी होते हैं किन्तु पंख गिर जाते हैं। राजा केवल पतिधर्म ही निभाता है, रानी केवल अंडे देती है और नाम के लिए सारे संघ की अधिष्ठात्री होती है।

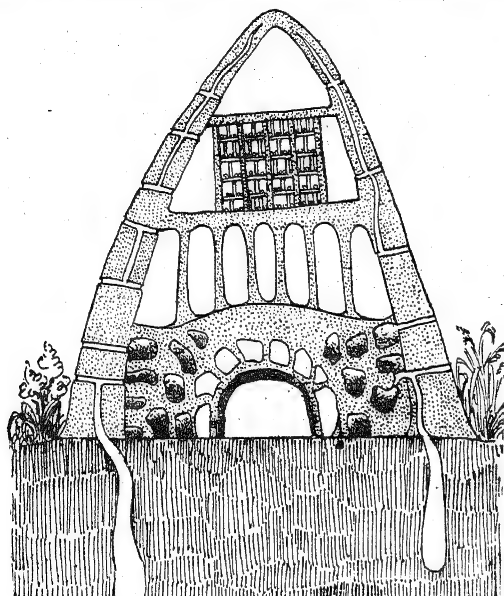
दीमक का उच्च गृह या (बांबी) एक बुर्जनुमा टीला होता है। भीतरी रचना बड़ी पेचीदी होती है किन्तु निवासियों के लिए अत्यंत सुखप्रद होती है। कुल चार कोठे (अट्टालिका या मंजिलें) होते हैं। उनको बाहर से आवृत रखनेवाली दीवालें होती हैं। बुर्ज की दीवालें बड़ी मोटी होती हैं। आधार तल पर उनकी चौड़ाई २ से ३ फुट तक होती है। बाँबी में लगी हुई मिट्टी सूख कर बड़ी कड़ी बन जाती है। कड़ेपन तथा दृढ़ता में पक्की ईंटों की तुलना कर सकती है। सब कुछ बड़ा व्यवस्थित होता है। मैदानों में ढोरों के चरवाहे अपने जानवरों पर दृष्टि रखने के लिए इन बाँबियों पर चढ़ कर खड़े हो जाते हैं, परन्तु उनके बोझ से बाँबी को तनिक भी क्षति नहीं पहुँचती। इसकी बाहरी दीवालें दो प्रकार की दालानों युक्त खोखली होती हैं। कुछ दालानें तो आड़ी होती हैं जो बाहर से भीतर की ओर सभी कोठों के लिए मार्ग देती हैं। दूसरे प्रकार की दालान सर्पिलाकार ऊपर उठती हुई गुम्बज के ऊपर तक पहुँचती है। जब बाँबी पूर्ण बन जाती है तो इन खड़ी दालानों का उपयोग कुछ भी नहीं रह जाता। वे राजगीरों को गुम्बज तक पहुँचाने के लिए मार्ग थीं। यदि दीवाल को कहीं क्षति पहुँच जाय तो उसकी मरम्मत में ये खड़ी दालानें पुनः प्रयुक्त हो सकती हैं। ये दालानें निम्न भाग की बाँबी में यथेष्ट चौड़ी होती हैं और भूमि के अन्दर डेढ़ गज की गहराई तक पहुँची होती है। ये सुरङ्गनुमा या भूगर्भीय दालानें हमारे मकानों के तहखाना (भूगर्भीय कक्ष) के समान होती हैं। दीमकों द्वारा वे इसलिए खोदी गई होती हैं कि बाँबी बनाने के

लिए मिट्टी प्राप्त हो सके। बाद में वर्षा काल में यदि बाँबी में पानी पहुँच जाय तो उसे नीचे बहा ले जाने के लिए वे काम देती हैं।

दीमक की बाँबी की बाहरी दीवाल बड़े विचित्र रूप की होती है। इसके भीतर के दृश्य का अवलोकन करें। पहले धरातलीय अट्टालिका पर ही ध्यान दें। उसके मध्य भाग में राजकीय कक्ष होगा। उसकी दीवालें बड़ी ही पुष्ट होती हैं और वायु आने-जाने के लिए वातायन भी बने होते हैं। श्रमिक दीमकों के आने-जाने के लिए मार्ग भी होते हैं। इस कक्ष में वायु का बदलना आवश्यक होता है क्योंकि उसमें दो हजार से भी अधिक दीमकें रहती हैं। उसके द्वार श्रमिक दीमकों के आने-जाने के लिए तो यथेष्ट बड़े होते हैं। परन्तु रानी उनमें होकर आ जा नहीं सकती। इसलिए वह इस देवालय में देवमूर्ति की तरह ही अचल या कारागार में बन्दी बनी रहती है। इस बन्धन का कारण यह होता है कि उसका उदर बड़ा होता जाता है। कुमारी रहने पर तो वह अन्दर प्रवेश कर सकती थी, परन्तु गर्भान्वित हो जाने के पश्चात् बाहर नहीं जा सकती। वह रात-दिन अंडे देती जाती है। प्रत्येक क्षण उसके गर्भाशय के द्वार से एक अंडा निःसृत होता रहता है। राजा दीमक निकट ही रहता है। आवश्यकता पड़ने पर वह सहायता पहुँचा सकता है। इन दोनों के चारों ओर सेवक घेरे पड़े रहते हैं। वे राजा रानियों का शरीर जिह्वा से चाटते रहते हैं जिससे प्रत्येक रोम में चिपका विजातीय पदार्थ पृथक हो जाय। रानी ज्यों ही अंडा देती है, एक श्रमिक तुरन्त ही पहुँच कर अंडे को जबड़े में दबा कर उठा ले जाता है। वह राष्ट्रीय सम्पत्ति होती है। वह दूसरे कोठे पर पहुँचाया जाता है जहाँ पर राष्ट्रीय या संघीय शिशुशाला स्थित होती है।

धरातलीय या पहले कोठे में बीच का भाग तो राजकीय भवन द्वारा ही घिरा होता है किन्तु उसके चारों ओर इस मध्यवर्ती भवन

से द्वारों द्वारा सम्बद्ध अन्य कक्ष होते हैं जिनमें रानी की परिचारिका दीमकें रहती हैं। इन क्षुद्र कक्षों के चारों ओर मार्ग होते हैं। मध्य-



दीमक की बाँबी का भीतरी दृश्य

वर्ती भवन तथा उससे सम्बद्ध क्षुद्रकक्षों द्वारा एक ठोस भाग बनता है। उसके चारों ओर अन्य कमरों के समूह होते हैं। इसके तथा बाहरी दीवाल के मध्य विशाल सामग्री-भण्डार होते हैं। वे अनेक विस्तृत भवनों रूप में विभाजित होते हैं। उनमें वे पदार्थ संचित रहते हैं जिन्हें दीमकें प्रतिदिन बाहर से पहुँचाती हैं। वे पदार्थ प्राय: वनस्पतियों के रस तथा गोंद होते हैं जो सुखा तथा पीस कर बारीक चूर्ण रूप में बने होते हैं। इस भंडार तक बड़ी

दालानों द्वारा प्रवेश-मार्ग होता है जो एक दूसरे को काटते हुए होते हैं और बाहरी दीवाल के आड़े बरामदों के मार्ग बाहर गए होते हैं।

धरातलीय अट्टालिका के ऊपर एक मिट्टी की मोटी छत होती हैं जो दूसरी अट्टालिका के लिए दृढ़ फर्श बनाती है। दूसरी अट्टालिका एक ही कक्ष की रचना होती है। यह दूसरी मंजिल (अट्टालिका) किसी काम नहीं आती। उसका एक मात्र उपयोग तीसरी अट्टालिका के लिए आधार बनना तथा उसे पृथक करना हो सकता है। इस व्यवस्था में बड़ी कुशलता प्रयुक्त होती है। इस दूसरी अट्टालिका में विभाजक दीवालें नहीं होतीं। केवल छत को सँभालने के लिए भारी-भारी स्तम्भ बने होते हैं। ये स्तम्भ एक गज से भी अधिक ऊँचे होते हैं। इस विशाल रचना में नन्हीं दीमकों का कार्य प्रशंसात्मक ही होता है। यह 'छोटे मुँह बड़ी बात उक्ति' को निरर्थक सिद्ध कर क्षुद्रकाय जन्तु की महत्काय रचना का बड़ा ही भव्य उदाहरण होता है। इस विशाल खाली रचना द्वारा इस गृह के मध्य में शुद्ध वायु का विशाल भंडार विद्यमान रहता है। बाहरी दीवाल की दालानों द्वारा यह वायु तापमान में विशेष परिवर्तन बिना ही यथेष्ट रूप में बदलती रहती है।

तीसरी मंजिल (अट्टालिका) दूसरी अट्टालिका के ऊपर होती है। वहाँ पर अंडे लाए जाते हैं और उनसे इल्लियाँ उत्पन्न होकर विकसित होती रहती हैं। मिट्टी की विभाजक दीवालों द्वारा यह अट्टालिका अनेक बृहद् कक्षों रूप में बँटी होती है। वे बृहद् कक्ष पुनः विभाजित होते हैं, परन्तु उनका विभाजक माध्यम मिट्टी का न होकर अधिक कोमल पदार्थ का होता है, जो विशेष ताप-निरोधक होता है। किन्तु बाँबी में अन्यत्र सब जगह मिट्टी का ही उपय.ग हुआ रहता है।

तृतीय-अट्टालिका के इन उपकक्षों को एक स्थिर तापमान पर रखना विशेष आवश्यक होता है जिससे अंडों का ठीक विकास हो सके। इस कारण उपकक्षों के विभाजन में प्रयुक्त पदार्थ काठ तथा गोंद के अंश होते हैं। दीमकें उन्हें एक में चिपका कर इन आवश्यक कक्षों की विभाजक दीवालें निर्मित करती हैं।

चौथी अट्टालिका की रचना शिशुशाला की रक्षा की दृष्टि से ही हुई रहती है। यह गुंबज के ठीक नीचे की रचना होती है। उसमें प्रायः कुछ भी नहीं होता। यह केवल ऊपरी गुंबज तथा शिशुशाला के मध्य अंतर रखनेवाली वस्तु होती है। इसमें केवल वायु रहती है जो बहुत दुर्बल तापवाहक होती है। इस प्रकार तीसरी अट्टालिका की शिशुशाला वायु की दो तहों के मध्य सुरक्षित रहती है। इस व्यवस्था के होने और विभाजक दीवालों के लिए उपयुक्त सामग्री का उपयोग होने के कारण रात की शीतवृद्धि तथा दिन की तीव्र उष्णता में से किसी का भी तीव्र प्रभाव शिशुशाला पर नहीं पड़ने पाता।

दीमकें अपनी इन रचनाओं में जितना अधिक श्रम करती हैं उतना ही अधिक रचना-कौशल भी प्रदर्शित करती हैं। उनकी प्रशंसा प्रत्यक्षदर्शी वैज्ञानिकों द्वारा जिस प्रकार होती है, वह अब केवल उर्वर कल्पना या अनुमान की बात नहीं कही जा सकती। हम केवल स्वयं उनका पर्यवेक्षण करने का कष्ट नहीं उठाते, इसी कारण ऐसे जघन्य प्रतीत होने वाले जंतुओं के चमत्कार हृदयंगम करने में कभी कुछ हिचक अनुभव करते हैं।

कुछ जंतु स्वाभाविक गीली मिट्टी से ही अपना गृह बनाते हैं उस अवस्था में उन्हें यह ध्यान रखना पड़ता है कि उनका निर्मित गृह ऐसे आड़ की जगह में हो जहाँ वर्षा द्वारा उसके नष्ट हो जाने का भय न हो किन्तु जो जन्तु धूल को ही लेकर अपनी लसिका

से आर्द्र कर गृहरचना करते हैं, उनकी रचना सूखने पर बड़ी दृढ़ हो जाती है। उसे पानी में गलने या नष्ट होने का भय नहीं रहता। वह तो पथरीली रचना समान ही होता है। कुछ को अपनी गृह-रचना ज्यों-त्यों कर ऊपर से ही ऐसा लेप करते पाया जाता है जो उनकी मिट्टी की दीवाल को पुष्ट तथा जल बना दे। "डौबर" ततैया (पेलोपियस) उन जन्तुओं में से है जो अपनी रचना साधारण पंक से ही करते हैं, इसलिए उसे रक्षित स्थल में बनाती है। इसके लिए वह सबसे उपयुक्त स्थल ढूँढ़ती है।

दक्षिणी योरप में "पेलोपियस" ततैया की जातियाँ पाई जाती हैं। वे मकान के कार्निसों (छत के नीचे भीतरी दीवालों की छोर पर चारों ओर बने कुछ बढ़े से भाग), बरसाती, छत, खिड़की, छप्पर, खलिहान आदि तक में अड्डा जमाती हैं। फेबर नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने तो एक घटना का विचित्र उल्लेख किया है। कुछ मजदूर कहीं जलपान-गृह में जलपान का आनन्द ले रहे थे, उधर डौबर ततैया ने आकर उनके टोप (हैट) तथा कपड़ों के मोड़ के अन्दर ही अपना मिट्टी का गृह अविलम्ब बना लिया।

अन्य स्थानों की बात तो छोड़ दें, उन्हें शीत देशों में मकानों के धुआँदानी (चिमनी) तक में अपना मिट्टी का गृह बनाकर निवास करते देखा जाता है। यह कैसी विचित्र वृत्ति है। यह सोच कर आश्चर्य होता है कि जो कीट सदा इधर-उधर नाचता-फिरता ही रहता है, वह धुएँदानी के धुएँ से अपना गला घुटने से कैसे रक्षा करता है। फेबर ने नीचे मकान में भट्टी के प्रज्वलित रहने पर बर्तनों में पकाने की वस्तुएँ उबलते रहने पर भी ऊपर चिमनी में ततैया को उस दहकती भाप तथा धुएँ के मध्य चुपचाप अपना काम करते ही रहते देखा। वह उसके मध्य से बेधड़क ही उड़कर आती-जाती रहती।

डौबर ततैया साल के सभी महीनों में अपना गृह बना लेती है। शीत देशों में उसे गृह-निर्माण की क्रियाशीलता के लिए केवल मौसम में उष्णता आवश्यक होती है। जब उसे कार्य प्रारम्भ करना होता है वह आस-पास के स्थानों में कहीं आर्द्र, पंकिल भूमि ढूँढ़ती है। उसे पा जाने पर उसके सुन्दर कार्यकलाप को देखना एक मनोहारी दृश्य होता है। वह शरीर में मैल न लगने देने का जितना अधिक ध्यान रखती है, वह दर्शनीय होता है। अपने झिल्लीनिर्मित पंख को त्वरागति से प्रकंपित करते तथा पैरों को बाधा न देने के लिए बिल्कुल ऊपर उठाये रहकर तथा शरीर की पीली कमर के पीछे के काले अधोभाग के ऊपर तना रख कर वह अपने जबड़ों की छोर से शिथिल पंक के चमकीले तल पर हल्का झपट्टा-सा मार कर कीच कुरेद लेती है।

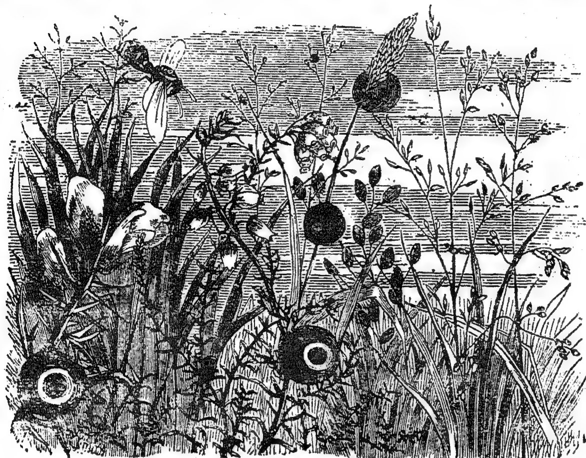
हमारी गृहस्वामिनी या गृहपरिचारिका बाहुओं की आस्तीन चढ़ाकर तथा साड़ी को कुछ ऊपर समेट कर या कच्छा मार कर घरेलू धंधे करने को अग्रसर होती है किन्तु वह ततैया से अधिक स्वच्छता से कार्य करने का उदाहरण रखने में अक्षम ही हो सकती है। यह पंक-संचायक ततैया स्वच्छता की प्रतिमूर्ति ही होती है किन्तु आस्तीन चढ़ाने के स्थान पर वह शरीर के प्रत्येक भाग को पंक के तनिक भी सम्पर्क से वंचित ही रखती है, अपवाद स्वरूप केवल अपनी पादांगुलियों की छोर तथा जबड़ों की नोक ही पंक से स्पर्श होने देती है। इस प्रकार पेलोपियस (डौबर) ततैया पंक का एक मटर बराबर ढोंका उठाकर अपने जबड़ों में दबा लेती है और गृह बनाने के चुने हुए स्थल तक उड़ जाती है। उसे अपनी लसिका मिलाये बिना ही उसे कुछ मामूली गढ़कर उस स्थान पर फैलाती है और ऐसे ही पंक के लोंदे रख-रखकर एक इंच लम्बी खोखली कोठरी कुछ अंडाकार-सा बना लेती है। यह कक्ष भीतर

से बड़ी सावधानी से चिकना लेती है, किन्तु बाहरी दीवाल बिलकुल विषमतलीय तथा भद्दी होती है। जब वह एक कक्ष पूर्ण कर लेती है तो उसी के पार्श्व में दूसरा कक्ष बनाती है। उसके बाद तीसरा, चौथा आदि कक्ष बनाती जाती है। वे सब एक ही ढाँचे के होते हैं। कभी-कभी पहली कक्ष-शृंखला के पास दूसरी, तीसरी कक्ष-शृंखला भी बनाती है। प्रत्येक कक्ष में वह कई मकड़े डंक के विष-प्रहार से मूर्छित कर रखती है और उसके पास एक अंडा देकर कक्ष का द्वार बन्द कर देती है।

ततैया लम्बोतरे शरीर, विचित्र रूप की पतली कमर, चमकीले पीले पैर, और वक्ष तथा मटमैले गहरे लाल रंग के उदर का कीट है जो देखने में सुन्दर रूप प्रदर्शित करती है। किन्तु उसमें "विष-रस भरा कनक घट जैसे" की उक्ति के अनुसार ऐसे विषैले डंक की व्यवस्था होती है जिससे मकड़े अर्द्धजीवित या मूर्च्छित हो जाते हैं। ततैया के अंडे से उत्पन्न शिशु उन्हें कालान्तर में भक्षण कर अपने शरीर का विकास करता है। जीवन की इन कटुतापूर्ण सत्यताओं का उसके सुन्दर सुडौल रूप से तारतम्य बैठता नहीं दिखाई पड़ता परन्तु तथ्य तो दोनों का अविभाज्य मिश्रित रूप ही है।

एक एकाकी जीवी ततैया का वैज्ञानिक नाम "यूमेनीज़" है। इसके गृह की रचना में पंक के साथ कंकड़ी जमाने या मिश्रित करने की व्यवस्था होती है। चेलिकोडोमा (एक राजगीर मधुमक्खी) की ही भाँति यह भी "री-इनफोर्स्ड कांकरीट" अर्थात् पत्थर की मिट्टी का बालू और सीमेंट से मिश्रण कर सुखाने से बनी रचना की तुलना में धूल में अपनी लसिका (थूक) सिंचित कर उसमें कंकड़ियों का मिश्रण कर दृढ़ रचना बनाती है। वल्कि यह चेलिकोडोमा से भी अधिक कंकड़ियों का मेल करती है। गृह-निर्माण

की कला तथा उसके लिए कंकड़ी, धूल, लसिका आदि के मिश्रण कर सीमेंट या मसाला बनाने में यह प्रवीण होती है। इसे धूप



यूमेनीज और एगीलीना

अधिक प्रिय होती है, इसलिए चट्टानों के प्रायः ऐसे ही भाग में अपना गृह बनाती है जो पूर्ण धूप के प्रभाव में रहता है। इस गृह का आकार इस प्रकार होता है जैसे अंडे के सिरे का कुछ भाग पृथक काट लिया गया है। इसका व्यास एक इंच होता है किन्तु उतना ऊँचा नहीं होता। यह चपटे तल द्वारा चट्टान से चिपका होता है। इसके ऊपरी तल पर एक गुंबदनुमा द्वार होता है जिसकी ऊपरी छोर बाहर की ओर झुकी होती है। इसके लिए एकाकी जीवी ततैया मार्ग की अत्यन्त सूखी धूल के साथ अपनी लसिका तथा कंकड़ियों या नन्हें घोंघों का उपयोग किये होती है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक फेबर ने इस ततैया के जीवन क्रम का पर्यवेक्षण कर देखा कि यह पहले $\frac{1}{5}$ इञ्च मोटाई की एक गोल दीवाल

बनाना प्रारम्भ करती है। उसमें प्रयुक्त की हुई सीमेंट (उसकी लसिका में सिंचित धूल का गारा) बड़ी जल्दी सूखती है। किन्तु उसके सूखने के पूर्व ही उस नर्म पंक में कुछ पथरीले ढोंके ला गाड़ती है। वह उन कंकड़ियों या क्षुद्र प्रस्तरखंडों को गारे में ऐसा आधा गाड़ती है कि वे गारे के कुछ बाहर निकले होते हैं किन्तु भीतर की ओर बढ़े नहीं होते क्योंकि भीतरी तल चिकना ही रखना होता है। यदि भीतर कुछ खुरदरापन हो तो उसे गारे से चिकना देती है। अब कंकड़ियों की तह के ऊपर पुनः गारा रखती है। उसके बाद कंकड़ी और गारे की तह एकान्तर रूप में लगाने का क्रम चलता रहता है। दीवाल का ऊपरी निर्माणकार्य चलने पर उसे भीतर की ओर झुकाती जाती है, जिससे बुर्ज या गुंबदनुमा रूप हो सके। मनुष्य तो ऐसी रचनाओं के लिए पहले नीचे गोल आकार का कच्चा ढाँचा भर कर ऊपर बुर्ज की छत बनाने के लिए ईंटे जोड़ता है, परन्तु यह ततैया किसी अवलंब बिना ही अपनी गुंबदनुमा रचना पूर्ण कर लेती हैं। अन्त में नन्हा छिद्र रखकर आहार और अंडे भीतर भर लेती है और बाद में सीमेंट के साथ एक कंकड़ी रख कर वह छिद्र भी बंद कर देती है।

एकाकी जीवी ततैया का बनाया गृह एक भद्दी रचना होने पर भी ऋतुविषमता को ललकार सकता है। विकटतम ऋतु का भी उस पर कुप्रभाव नहीं पड़ सकता। आप उँगली से कितना भी दबावें, उस पर कोई चिन्ह या झुकाव नहीं हो सकता। चाकू से निचला तल छेदकर आप उसे अखंड रूप में ही हटा सकते हैं।

ततैया का एकाकी कक्ष इस प्रकार का ही होता है। वह अधिकांशतः इस कक्ष के ऊपर अन्य कक्ष भी बना लेती है जिनकी संख्या पाँच, छः या इससे भी अधिक हो सकती है। इसमें कुछ परिश्रम की भी बचत हो जाती है क्योंकि दो कक्षों के बगल-बगल

बनने से उनमें एक ही दीवाल उभयपक्षीय हो सकती है। किन्तु ऐसा होने पर उसका सुडौल रूप जाता रहता है। उन सब कक्षों की शृङ्खला पर पहले-पहल दृष्टि पड़ने पर तो ऐसा ज्ञात होता है मानो कङ्कड़ मिली हुई मिट्टी का कोई छोप दीवाल पर दूर से फेंक कर जमा दिया गया हो। किन्तु जब उसे ध्यान से निकट से देखा जाय तो हम प्रत्येक कक्ष को उनके घंटीनुमा पृथक-पृथक द्वारों को देखकर पहचान सकते हैं। प्रत्येक को अन्यों से विभिन्न देखा जा सकता है जिसमें द्वार पर कङ्कड़ी तथा सीमेंट से मढ़ा कपाट व्यवस्थित रहता है। दीवालों के बाहरी तल से उभड़ी हुई कङ्कड़ियों की नोकें भी हमें स्मरण दिला सकती हैं कि उनकी उपस्थिति ततैया द्वारा दीवाल को विशेष दृढ़ता प्रदान करने के लिए हठात् होती है।

एक मधुमक्खी ताम्रवर्णीय त्वचा पर चमकीले लाल रंग के कोमल रोम धारण किए होती है। इसे "ओस्मिया" मधुमक्खी कहते हैं। रूप तो बड़ा सुन्दर होता है, किन्तु वे अध्यवसायी भी कम नहीं होतीं। उनका यथेष्ठ समय पंक से सीमेंट बनाने में जाता है। ये मधुमक्खियाँ मिट्टी की ही रचना करने की क्षमता रखती हैं। उसमें भी इन्हें सड़क की सूखी धूल लेकर अपनी लसिका (थूक) के साथ मिश्रण कर उसे विचित्र सीमेंट बनाने की कला भी नहीं आती। यह तो पंक का ही खेल-खेलकर जीवन निर्वाह कर लेने की अभ्यस्त होती है। मिट्टी को शिथिल पंक रूप में पाकर ढो लाना और उसे गढ़कर गृह बनाना ही यह गृह-निर्माण कला की सीमा जानती है। बेचारी को प्रकृति ने अधिक प्रवीणता प्रदान न की तो वह दुख मनाकर ही जीवन क्यों व्यतीत करे। ज़ो कुछ भी सीमित साधन या कौशल प्राप्त हो, उससे संतोष कर जीवन बिता ले जाना भी व्यावहारिक बुद्धिमानी ही है। किन्तु केवल पंक को

सुखाकर बना गृह तो पानी की एक बूँद से ही हिल उठने वाली रचना हो सकती है, अतएव इसे इस बात का अवश्य ध्यान रखना पड़ता है कि उसका मिट्टी का गृह वर्षा से भली-भाँति सुरक्षित रह सकने वाले स्थल में ही हो। अतएव यह सदा ऐसे अंतरालों में ही अपना गृह बनाती है जहाँ वर्षा का प्रहार न हो।

ओस्मिया के घोंसले प्रायः उन नरकुलों के खोखले तनों में बने होते हैं जो प्रायः मनुष्य द्वारा किसी उपयोग में आ रहे हों। इसका विशेष कारण होता है। जब नरकुल काट लिए गए हों तो तने के शेष खड़े भाग के छिद्र में कीटों को आश्रय प्राप्त करने का अच्छा सुभीता हो सकता है, परन्तु बेचारी ओस्मिया का मिट्टी का घोंसला यदि उसमें बने तो उस तने का छिद्र ऊपर की ओर होने से वर्षा का पूर्ण प्रहार उसके अन्दर के घोंसले पर पड़े किन्तु जब कटे हुए नरकुल को मनुष्य किसी काम में ला रहा हो तो वह भूमि पर आड़ा ही पड़ा हो सकता है। इस कारण वर्षा का उसके छिद्र में प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसी कारण नरकुल के ऐसे खंडों में अपना घोंसला बनाना ओस्मिया के लिए सुविधाजनक होता है। इस तरह नरकुलों या किलकों के छप्पर में प्रयुक्त होने पर उनके खोखले छिद्र में ओस्मिया सहज ही अपना गृह बना सकती है किन्तु ओस्मिया ऐसे खोखले तने के वनस्पतियों तक ही अपने आश्रय को नहीं सीमित रखती। वह किसी भी सुरक्षित छिद्र में गृह बना लेने के लिए तत्पर रहती है। कदाचित उसके लिए सबसे अधिक सुविधाजनक आश्रय-स्थल घोंघों का खोखला छिद्र होता है। उसके अंतर्भाग को वे पंक की दीवालों से पृथक कर अनेक कक्षों रूप में कर लेती हैं। प्रत्येक में एक-एक अन्डा देती हैं। नरकुल या घोंघा न मिलने पर वे राजगीर मधुमक्खी के ही त्यक्त गृह को ग्रहण कर लेती हैं। यही नहीं, कुञ्जी के छिद्र, मकान की लकड़ियों

के रंध्र या रासायनिक की काच-नली में भी गृह बनाकर अन्डे दे सकती हैं। अपने गृह-निर्माण के सम्बन्ध में ओस्मिया की विभिन्न जातियाँ अपनी पृथक वृत्ति ही रखती हैं। उस वृत्ति को विवश न होने तक परिवर्तित नहीं करतीं हैं। उदाहरणार्थ कुछ "ओस्मिया" मधुमक्खियाँ मिट्टी का गृह बिल्कुल ही नहीं बनातीं, बल्कि कोमल तथा काठ युक्त पौधों को ही टुकड़ों-टुकड़ों में कर कागज की यथार्थ लुगदी बनाकर अपने भावी शिशुओं के लिये उसी से गृह बनाती हैं।

जब ओस्मिया कोई उचित गड्ढा पा जाती है तो पहले उसकी ठीक तरह सफाई करती है, उसके अन्दर से कूड़ा-करकट कुछ दूर फेंक आती है। यदि सुरङ्ग या छेद पतला हो तो वह भीतर की दीवाल में जहाँ-जहाँ आवश्यकता होती है, पंक के लेप से केवल चिकनाकर ही उसमें मधु और पराग का भण्डार भावी शिशुओं के लिये एकत्र करने लगती है। यदि छिद्र अधिक चौड़ा जान पड़े तो पहला काम यह करती है कि उसके भीतरी सिरे पर एक मिट्टी की विभाजक दीवाल बनाकर छोटा कक्ष बना लेती है जिसमें द्वार भी रखती है। फिर उसमें खाद्य तथा अन्डा रखकर द्वार बन्द कर देती है और कुछ दूरी पर एक दूसरा कक्ष बनाना प्रारम्भ करती है। इसी प्रकार उसका आगे भी काम बढ़ता है।

ओस्मिया किसी चौड़े छिद्र में विभाजक दीवाल बनाकर उसे बन्द करने का इसलिए प्रबन्ध करती है जिससे अन्य कीट उसके अन्डे तथा भावी शिशु के लिए रक्षित खाद्य पदार्थ को हड़प जाने के लिए वहाँ अपने अन्डे न दे दें। इस विभाजक दीवाल को बनाने के लिये पहले वह एक गोल हाशिया बनाती है। फिर उसी के सिरों पर धीरे-धीरे मिट्टी जोड़ती है। इसके लिए अपना सिर दीवाल के एक ओर तथा पिछला अङ्ग दूसरी ओर कर घूमती जाती है। इस

तरह पिछले अङ्ग से कन्नी का काम निकलता है और दीवाल इसके तथा जबड़े के मध्य दबती है और चिकनी तथा एक समतल तह के रूप में तैयार हो जाती है। नरकुल में पहले के बने कोष्ठक लम्बे होते है, उनकी दीवालें दूर-दूर होती हैं, किन्तु बाद वाले छोटे होते हैं। उनकी कोई निश्चित नाप का क्रम नहीं होता। सारे छिद्र को बन्द करने वाली अन्तिम दीवाल बड़ी मोटी होती है। वह बाहरी बाधा से भीतरी भाग की सम्पूर्ण रचना तथा उसके पदार्थों को रक्षित करने के लिए होती है। प्रत्येक कोष्ठक में कुछ पराग होता है जिसमें यह कुछ मधु भी उँडेल देती है। मधु पराग-कणों में स्रवित होकर एक खाद्य लुगदी का निर्माण करती है। उसमें अन्डे का एक सिरा डूबा रहता है। इस कारण उसमें से उत्पन्न इल्ली का मुख जन्म धारण करते ही मधुमय लुगदी के मध्य होता है। वह अपना स्थान परिवर्तित किए बिना ही आहार-प्रचुरता का सुख अनुभव करती है। जब वह पूर्ण खाद्य पदार्थ खा चुकती है तो अपने शरीर के ऊपर एक सूत्रीय आवरण या कोया बुनकर कुछ समय के लिए निद्रा-ग्रस्त हो जाती है। फिर उस अवस्था के बाद उस कोये से वयस्क ओस्मिया रूप में प्रकट होती है।

एक ततैया क्षुद्र पीत पट्टित श्यामवर्णीय होती है जिसका वैज्ञानिक नाम 'ओडिनेरस मुरेरियस' है। यह बिल भी बनाती है तथा राजगीरी का भी नमूना दिखलाती है। यह एक विचित्र योजना से काम करती है। यह बिल खोदने से प्राप्त मिट्टी को ईंटों या छोटे लोंदों रूप में रखकर बिल के बाहर मुख पर गोल बुर्ज की रचना करती है। बलुहे तल पर इस तरह के बने बुर्ज बहुसंख्यक दिखाई पड़ते हैं जहाँ कड़ी धूप का प्रसार होता है। यह ततैया कठोर तथा ठोस बालू ही अपने कार्य क्षेत्र के लिए चुनती है जो पत्थर की तरह ही कड़ा हो और उस पर उँगली धसा सकना भी कठिन हो। इसमें

वह बहुत अधिक प्रवीणता प्रदर्शित कर दिखाती है। शिथिल बालू की दीवाल तो बनाना बराबर ही हो सकता है, किन्तु ठोस तल पर दृढ़ रचना हो सकती है। ऊपर की रचना की बात छोड़ भी दें तो बिल के लिए तो कठोर भूमि होना और भी अधिक आवश्यक होता है अन्यथा किनारों के धस जाने से उसको नष्ट होते कुछ देर ही न लगे।

ओडिनेरस ततैया का शरीर केवल आधा इञ्च ही लम्बा होता है। उसका कठोर भूमि को खोद कर बिल बना सकना तो ऐसा ही है जैसे सिरस के कोमल फूलों से हीरे सी कठोर वस्तु के छेदने का प्रयास करना (सिरिस फूल किमि बेधहिं हीरा।) फिर भी यह जन्तु अपने कार्य में सफल होकर असंभव को भी संभव सिद्ध कर देता है। इसके लिए उसकी सूझ में एक प्रभावोत्पादक बात यह आती है कि भूमि को अपने मुख से द्रव गिराकर सिंचित कर दें। इस तरह आर्द्र तल को वह सहज ही खोद सकती है। इस तरह कुछ कण अपने दृढ़ जबड़ों से खुरचकर वह उसे अगले पैरों द्वारा लोंदे रूप में बना लेती है तथा इस छेद के किनारों पर रखती है। छेद की गहराई सरसों बराबर ही पहले होती है और एक सरसों के बराबर ही यह रेत भी निकली होती है जो किनारे लोंदे रूप में बैठाई होती है।

नन्हें छेद से निकाली हुई क्षुद्र मात्रा की रेत के लोंदे से यह ततैया छेद के मुख पर एक बुर्ज की नींव डालती हैं। जबड़ों तथा पैरों से उस लोंदे को गठित तथा चपटाकर ठीक स्थान पर रखती है। फिर पूर्ववत् ही कार्य पुनः आरम्भ करती है। धीरे-धीरे गड्ढा बड़ा होता है, उधर छोरों पर बुर्ज भी खड़ी होती जाती है। यह कैसा निरर्थक प्रयास जान पड़ता है। अकेले बिल बनाने वाले जन्तुओं की कहानी हम पढ़ते हैं, अकेले बुर्ज या कोष्ठक बनाने

वाले जन्तु भी होते हैं। इन दो विभिन्न प्रकार की गृह-निर्माण पद्धतियों की बेमेल खिचड़ी ओडिनेरस ततैया न जाने क्यों पकाती है। फिर भी उनका गड्ढा खुदता ही रहता हैं, ऊपर बुर्ज बनती ही रहती है। बहुत दिनो से इस जाति की ततैया यह निर्माण-क्रम अपनी संतान वृद्धि के लिए संचालित रखती आ रही हैं। वैज्ञानिकों ने इस घटना पर विशेष दृष्टि रखकर इनके बेढब निर्माण कार्य का उद्देश्य जानने का प्रयत्न किया है।

ततैया कभी-कभी आर्द्र द्रव की खोज में बाहर घूमने के कारण अपना निर्माण-कार्य कुछ बीच में स्थगित रखती मिलती है। किन्तु उसका निर्माण-कार्य पूर्णतः स्थगित नहीं होता। कुछ घन्टों में पूर्ण बुर्ज बनाकर ही वह संतोष की साँस लेती है। इस नन्हें कीट द्वारा एक दो इञ्च ऊँचे बुर्ज की रचना हो जाती है जिसके नीचे इतनी गहराई का बिल भी होता है।

ततैया के बुर्ज का प्रथम भाग नींव के ऊपर लंबवत् सीधा बना होता है किन्तु ऊपर जाकर भीतर की ओर झुकने लगती है। ऊपरी सिरा कुछ अंश तक ऐसा लटका होता है जिससे उसके गिर जाने की आशंका होती है। एक दूसरी बात यह भी होती है कि दीवाल की रचना बहुत पुष्ट ढंग से नहीं हुई होती। उसमें लगे हुए रेत के क्षुद्र लोंदे एक दूसरे से पूर्ण चिपके नहीं होते। दीवाल में प्रायः जहाँ-तहाँ अनेक छिद्र पड़े होते हैं मानों छत पर की कोई अधखुली रूप की बनी मुड़ेरी की दीवाल हो। यह रचना स्पष्ट प्रकट करती है कि उसका उद्देश्य कोई पुष्ट रचना प्रस्तुत करना नहीं होता। अतएव इसकी उपयोगिता और भी रहस्यपूर्ण ज्ञात होती है। जब इतनी शिथिल रचना है तो ततैया उसे बनाने का कष्ट ही क्यों उठाती है! बिल की तो हम भी आवश्यकता अनुभव करते हैं। उसमें उसके अंडे पलेंगे किन्तु बुर्ज पहेली ही है।

रिउमुर नाम के वैज्ञानिक ने सूक्ष्म पर्यवेक्षण कर इस ततैया के बुर्ज का रहस्योद्घाटन जिस प्रकार किया है, वह एक बड़े कौतूहल की बात है। कीटों का घोर शत्रु एक दैत्य मक्खी होती है। वह बुर्ज में दृष्टि डालकर वापस चली जाती है। उसे उसमें प्रवेश कठिन ज्ञात होता है। बुर्ज की गहराई के साथ ही नीचे बिल की गहराई अंधकारपूर्ण होती है। इस ततैया का बुर्ज बनाने का एक मात्र ध्येय ऐसे शत्रुओं से बिल के अन्दर संचित खाद्य तथा अंडे को उस समय तक रक्षित रखना होता है जब तक बिल को ऊपर से पूर्ण बन्द न कर दिया जाय। इस उद्देश्य तथा बुर्ज की अन्य आवश्यकता का निदर्शन रिउमुर के पर्यवेक्षणों ने किया।

कई इञ्च गहरा छेद बनाकर पहले तो ततैया ऐसा स्थान बनाती है जहाँ पेंदे में धूप तथा बाहरी वातावरण का प्रभाव न पड़े। फिर वह कोई जीवित कैटरपिलर (तितलियों की इल्ली) दस बारह लाकर भीतर ठूँस देती है। यह उसके अंडे से उत्पन्न होनेवाली भावी इल्ली के लिए यथेष्ट खाद्य पदार्थ होता है। फिर वह अपना अंडा रखती है। अब उसे और कुछ भी करना नहीं रह जाता है, केवल ऊपर से छिद्र को अवरुद्ध करना भर रह जाता है जिससे भीतर कोई शत्रु न जा सके। इसी समय ऊपर वाले विचित्र बुर्ज की आवश्यकता होती है। यह केवल बिल के छेद को भरने के लिए तुरन्त सुलभ हो सकने वाला पदार्थ ही होता है जो अल्पकाल के लिए इस दुर्बल ढाँचे रूप में खड़ा कर लिया गया होता है। बिल खोदने पर खुदी हुई रेत कहीं फेंकने या रखने की आवश्यकता होती है। उसे कहीं ढूहे रूप में न डालकर यह ततैया आर्द्रता पहुँचा कर लोंदे बना लिया करती है और बिल के किनारों पर जमाकर अस्थायी ऊँची गद्दी-सी बनाती जाती है। ऐसा करने से एक तो यह शत्रुओं से रक्षा का साधन भी होता है और खुदी सामग्री भी

सुव्यस्थित रूप रक्खे होती है। बिल का द्वार बन्द करने के लिए उसे केवल एक-एक लोंदे उजाड़ कर बुर्ज के भीतर गिराते जाना पड़ता है। अन्त में भूतल के बराबर छिद्र ढक जाता है। अब उसका कोष्ठक पूर्ण हो चुका रहता है। भावी संतान के लिए खाद्य पदार्थ तथा रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध होता है। जन्म धारण करने पर इल्ली को सामने ही प्रस्तुत प्रचुर खाद्य सामग्री खाने तथा पुष्ट होने में कोई बाधा नहीं होती।

कुछ मधुसंचयी मधुमक्खियाँ भी इसी तरह का बुर्ज अपने खोदे हुए बिल के ऊपर बनाती हैं तथा उसे बाद में तोड़कर बिल का द्वार बन्द करती हैं।

अमेरिका के उष्ण भूभागों में छत्तेदार मधुमक्खी नहीं होती। वहाँ एक अपेक्षाकृत छोटी मधुमक्खी 'मेलिपोना फेसिकुलाटा' नाम की होती है। इसके डंक नहीं होती, परन्तु बाधा पहुँचाने पर मुख से बड़ी भीषणता से काटती है। यह एक बड़ा उपनिवेश स्थापित करती है। अन्य मधुमक्खियों की तरह इसके भी श्रमिक पराग संग्रह के लिए बाहर घूमते हैं किन्तु वे मिट्टी भी ढोकर लाते हैं। मिट्टी संग्रह में उनकी गति विचित्र व्यवस्थायुक्त होती है। वे जबड़ों से कुछ मिट्टी खोद लेते हैं, फिर एक पैर से दूसरे पैरों तक उसे फेंक कर पहुँचाते हैं। फिर पिछले पैरों द्वारा उसे पराग संचय करने की थैली में पहुँचाते हैं।

वे मधुमक्खियाँ वृक्षों के छिद्र तथा कगारों के दरार में अपने घोंसले बनाती हैं। अपने घोंसले के सम्मुख एक पुष्ट दीवाल बनाने के लिए वे मिट्टी का उपयोग करती हैं। केवल एक द्वार छूटा होता है जिसमें से वे बाहर भीतर आ जा सकती हैं। एक छोटी जाति तो मिट्टी के साथ कुछ चिपकन पदार्थ मिलाकर अपने घोंसले के

प्रवेश द्वार पर तुरहीनुमा द्वार मंडप (बरसाती) बनाती हैं। इस सुरक्षा के प्रबन्ध के साथ वे द्वार पर कई प्रहरी भी बैठा देती हैं।

'मेढकी को जुकाम' होने की अन्योक्ति बहुत ही प्रसिद्ध है किन्तु मिट्टी का गृह बनाने वाले पाँच सवारों में मेढकी भी नाम लिखा ही लेती है। यों तो मंडूक जाति ही विवेकशीलता का कोई नमूना रख सकने में असमर्थ होती है परन्तु अपवाद स्वरूप एक



मेढकी का जनन-गृह

एकाकी उदाहरण ऐसा है जिसमें मंडूक भी गृह-निर्माण का कुछ शिथिल प्रयास करता मिलता है। इस मंडूक की जाति को वैज्ञानिक

"हाइला फेब्र" कहते हैं। यह वृहत्तम वृक्षचारी मंडूकों में से एक जाति होती है। इसका निवास-स्थान ब्राजील है। वहाँ का स्थानीय नाम "फेरीरो" है, जिसका अर्थ कदाचित् शिल्पी है। यह शिल्पी मंडूक प्रतिभासम्पन्न कहा जा सकता है। सन्तानोत्पादन काल में मंडूकी की (मेंढ़की) तालाबों तथा अर्द्ध-जलमग्न स्थलों के छिछले तटों पर एक नियमित घोंसला बनाती है। वह पानी की तलेटी में घुस जाती है और अपनी दोनों भुजाओं में कीचड़ उठा लाती है जिसे किनारों पर इस प्रकार रखती जाती है कि एक गोल दीवाल-सी बन जाय। इसमें भीतर लगभग एक फुट व्यास की भूमि घिरती है। वह इसे बनाती ही जाती है जिससे पानी के तल से चार इञ्च तक यह गोली दीवाल बनकर ज्वालामुखी के मुख का अनुकरण करती है। भीतरी भाग को भलीभाँति चिकना कर पेटा भी बराबर करती है। इसके लिए अपने चौड़े हाथों, पैरों तथा शरीर को घुमा-कर काम लेती है। नित्य संध्या के बाद ही यह कार्य संचालित रहता है। दूसरे दिन यह सन्तानशाला (घोंसला) तैयार हो जाती हैं। उसमें अंडे दिये जाते हैं। अंडों तथा भावी शिशुओं की जलजन्तुओं से यहाँ रक्षा प्राप्त हो सकती है। नर-मंडूक इन सब कृत्यों से दूर ही रहता है। किन्तु नर और मादा दोनों ही उस शिशुशाला पर दृष्टि रखने के लिए निकट ही रहते हैं।

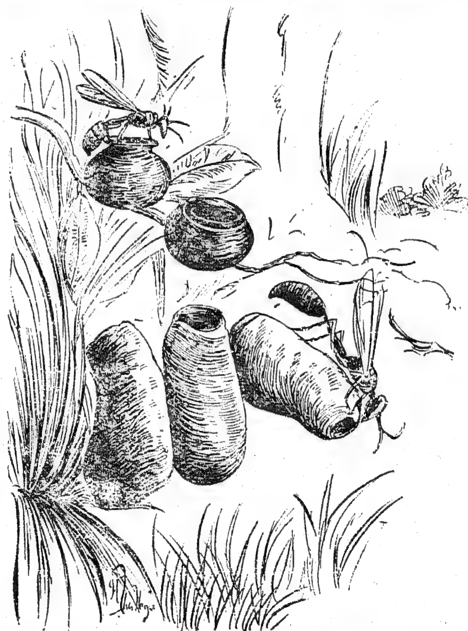
जन्तुओं का घटाकार गृह-निर्माण

कुछ जंतु ऐसे होते हैं जिनमें पंक को इस प्रकार गढ़ने की कला ज्ञात होती है जिससे कुम्हार की चाक पर गढ़े हुए मृत्तिकापात्र या घड़े के अनुरूप कच्ची मिट्टी की रचना प्रस्तुत कर सकते हैं। 'पेलोपियस' प्रजाति के कीटों में राजगीर होते हैं। किंतु एक वैज्ञानिक ने मधुमक्खियों तथा ततैया की ऐसी कई जातियाँ देखीं जो उन गड्ढों से ही मिट्टी ला रही थी जहाँ से कुंभकार अपने भांड निर्माण के लिए मिट्टी लेते हैं। उनमें सबसे प्रमुख एक बड़े आकार की पीले काले वर्ण की ततैया थी जिसकी लम्बी पतली कमर होती है। इसका वैज्ञानिक नाम 'पेलोपियस फिस्टुलारिस' है। यह मिट्टी को छोटे गोल ढोकों रूप में उठा ले जाती। अपने जबड़ों से बेलन कर उसे एक सुविधाजनक आकार में कर लेती। अपने पर भनभनाती हुई सीधे गड्ढे में आती और नीचे आकर एक क्षण भी नष्ट न करती। तुरन्त ही काम में लग जाती। दो-तीन मिनट तक मिट्टी का ढोंका बेलन कर सुडौल रूप का तैयार करती। इसका घोंसला एक थैलीनुमा बना होता है जिसकी लम्बाई दो इन्च होती है और किसी शाखा या प्रवर्द्धित भाग पर बना होता है। एक बार एक नौका के यात्रियों के एक स्थान पर दो-चार दिन विश्राम करने चले जाने पर नौका के अन्दर रक्खे एक संदूकची के दस्ते पर ही अपना घोंसला गढ़ने लगी थी। उस समय उसके गढ़ने की क्रिया एक दूरबीन द्वारा देख सकना संभव था।

वह ततैया प्रत्येक ढोंके को एक विजयगान के साथ ही लाती ज्ञात पड़ती और उसे लेकर उतरने के बाद कार्यसंलग्न हो जाने

पर उस विजयगान को आह्लादपूर्ण भनभनाहट में बदल देती। पंक का प्रत्येक ढोंका कोष्ठक के किनारे पर रखती और फिर गोलाकार कोरों के चारों ओर फैलाती। उसकी अधोजिह्वा जबड़ों से नियंत्रित होकर इस कार्य को सम्पन्न करती। वह कोरों पर स्वयं बैठ जाती और प्रत्येक ढोंके को जोड़कर चारों ओर एक चक्कर लगा आती, और नये ढोंके लेने उड़ जाने के पूर्व कोरों के भीतरी तथा बाहरी तल अपने पैरों से दबाती।

यह ततैया धूप निकले हुए मौसम में ही काम करती है। कभी-



ट्रिपोक्सिलोन और पेलोपियस

कभी पहला रहा ठीक तरह सूख जाने के पूर्व ही उस पर दूसरा

रद्दा चढ़ा देती है। पूरी रचना पूर्ण करने के लिए सप्ताह भर का समय अपेक्षित होता है। यदि इनके बन्द किये हुए घोंसले को खोदकर देखा जाय तो उसमें सदा अर्द्ध मृत मकड़ा बंद पाया जायगा। अपनी भावी संतान के आहार के लिए ही मादा उस मकड़े को अर्द्धमृत कर भीतर बंद कर देती है।

इसी तरह के घटाकार गृह-निर्मायक कीटों में 'ट्रिपोक्सिलोन आल्बिटार्सी' एक बड़े आकार का काला कीट है जो तीन-चौथाई इञ्च लम्बा होता है। यह गृह-निर्माण के समय बड़ी ध्वनि उत्पन्न करता है। यह दीवालों या किवाड़ों पर ही मिट्टी का गृह बनाता है। जब दो या तीन एक जगह ही गृह-निर्माण कर रहे हों तो उनके शब्द से कान झनझना उठता है।

एक ततैया 'ट्रिपोक्सिलोन औरिफ्रान्स' नामक जाति की होती है। इसका प्रसार उष्ण कटिबंधीय अमेरिका में है। इसका चित्र इसके निर्मित घटों के साथ यहाँ दिये हुए चित्र में ऊपरी भाग में है। यह कीट मिट्टी के घट बहुसंख्यक बनाता है। प्रत्येक घट में एक कोष्ठक ही होता है और वह एक अंडे का आश्रय-स्थल होता है। उसके अन्दर यथेष्ट खाद्य सामग्री रूप में अन्य कीटों के कैटरपिलर भर कर यह अपने अंडे रखता है। इन घटों का रूप द्वार के कारण उल्लेखनीय होता है। चित्र में प्रदर्शित ढंग से ही वे द्वार पतले बनाकर गोल कर दिए गये होते हैं। कुछ में तो कोष्ठक के आकार की तुलना में मुख या द्वार रूप की ग्रीवा इतनी छोटी होती है और कोर इतनी भव्यता से मुड़ी होती है कि वह काँच के बोतल के मुख की तुलना करती है। इन्हें यह कीट यथेष्ट संख्या में बनाता है। उन्हें कभी चित्र में प्रदर्शित ढंग से डालों में बँधा रखता है किन्तु अधिकतर मकान की धन्नियों में ही चिपकाये होता है। बरामदों के कोनों में इसे अपना घटगृह बनाना अधिक

प्रिय होता है। वहाँ कोष्ठकों की पूरी शृंखला बना लेता है। उन्हें बनाते समय बराबर भनभनाहट करता रहता है।

सबसे कुशल घटनिर्माण का श्रेय एक कृशकाय कीट 'एजेनिया' को दिया जा सकता है। इसका रूप तो छोटा और रंग काला-कलूटा होता है, परन्तु गृह-निर्माण कला में बड़ा ही प्रवीण होता है। मृत्तिका गृह-निर्माताओं में कदाचित ही कोई अन्य कीट उसे नीचा दिखा सके। उनके बनाये घट सुडौल तथा कोमल होते हैं मानों वे चीनी मिट्टी के छोटे पात्र हों। एजेनिया प्रजाति में पंकद्रुम जाति का कीट छोटे, अंडाकार घट निर्मित करता है किन्तु ह्यालिपेनिस जाति का कीट एक पुरानी प्यालीनुमा बनाता है। ये कीट अपने मृदु पात्रों के सुगठित झुकाव में ही अपनी मृत्तिका-निर्माण-कला प्रदर्शित नहीं करते, बल्कि अन्य रूप में भी अपना कौशल दिखलाते हैं। उनके घट का बाहरी तल झुकाव में तो समरूप अवश्य होता है, परन्तु उसका तल विषम होता है। तल को सुव्यवस्थित बनाने का कुछ ध्यान नहीं रक्खा गया होता। वह तो केवल छोटे ढोंकों के रखते जाने से ही, विषमतलीय, तथा जल-शोषक होता है। यदि घट को पानी में रख दिया जाय तो वह गलकर आकृतिहीन हो जाता है। किन्तु भीतरी तल बड़ी सावधानी से चिकनाया होता है, इतना ही नहीं, वह जल-अभेद्य भी होता है। उसके अन्दर डाली हुई पानी की बूँद दीवाल में प्रवेश नहीं करती। घट के अन्दर ही पड़ी रहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एजेनिया कीटों को वह कला ज्ञात है जिससे मृत्तिका-भांड सुचिक्कणतलीय बनाया जा सके और जल-अभेद्य हो। इन सफलताओं के लिए उसे कोई बाह्य पदार्थ उसे प्रयुक्त नहीं करना पड़ता। वह जल-अभेद्यता उत्पन्न करने वाला पदार्थ घट के भीतरी तल पर पतली तह रूप में उसी प्रकार लेपित

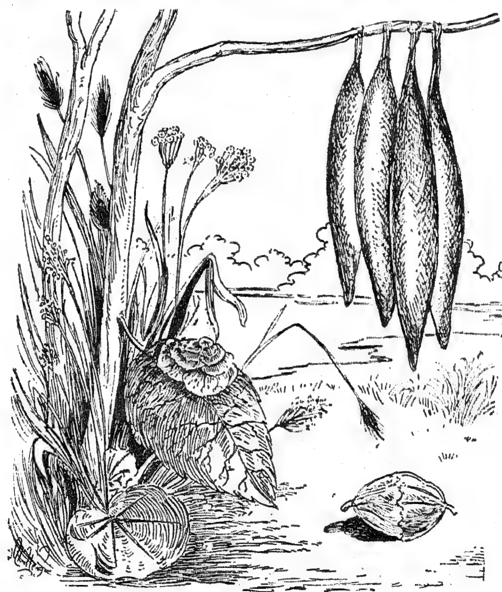
करते हैं जैसे कुम्हार मिट्टी के बर्तनों पर चिकनाई का लेप लगाता है। यदि सारे भांड को जल-अभेद्य बनाया जा सकता तब तो और भी अधिक चमत्कार की बात होती। वह अधिक टिकाऊ होता। वर्षा के प्रकोप में दुर्भाग्यवश पड़ जाने पर क्षति प्राप्त न करता। किन्तु चिकनाई का लेप एजेनिया को स्वयं लगाना पड़ता है। उसके शरीर के आकार की अपेक्षा घटाकार गृह तो बहुत बड़ा होता है। उसकी क्षुद्र ग्रन्थि की क्षमता के बाहर की ही यह बात हो सकती है कि सारे गृह की दीवालों के लिए विशेष लेप उत्पन्न करे। यह क्रिया उसके लिए बड़ी ही महँगी होती। वह इनकी बार-बार रचना भी न कर सकता। इस कारण धूल या मिट्टी तो जलसिंचित कर ही गृह निर्माण में प्रयुक्त होती है। उसके शरीर की ग्रन्थि का विशेष रस केवल भीतरी तल को जल-अभेद्य बनाने के लिए ही प्रयुक्त होता है।



कीटों के शाखावलम्बी गृह

कीड़े-मकोड़ों में कुछ को हम बिल बनाते देखते हैं। कुछ वृक्षों पर शाखाओं तथा टहनियों पर लटकता गृह बनाते हैं। कुछ दीवालों, स्तंभों, छप्परों आदि में मिट्टी, कागज, मोम आदि का गृह बनाते हैं, कुछ काष्ठभेदक ही होते हैं। हम यहाँ पर शाखाओं के आधार पर बने कीटों के गृहों का कुछ वर्णन दे रहे हैं।

कीटों के शाखावलम्बी या अन्य गृहों के रङ्ग-रूप तथा प्रयुक्त



मकड़े का शाखावलम्बी घोसला

पदार्थों में यथेष्ट विभिन्नता होने पर उनके निर्माण का मुख्य ध्येय

सन्तानोत्पादन और सन्तान-रक्षा होता है। शाखावलम्बी गृहों को यथार्थ घोंसला कहना ठीक है। एक मकड़ा शाखावलम्बी गृह बनाने में कुशल है। उसके निर्मित गृह तकुए के आकार के बने लम्बोतरे रूप के होते हैं जो बहुसंख्यक रूप में किसी शाखा से लटके हो सकते हैं। उनका रङ्ग लगभग श्वेत होता है जिसमें थोड़े पीलेपन की झलक होती है। वे बहुत कोमल तथा सूक्ष्म रचनाएँ होती हैं। प्रकाश में देखने पर वे बड़े विचित्र पदार्थों का गुट्ट जान पड़ती हैं।

तुलना के लिए इसके चित्र में ही मकड़े के अन्य दो प्रकार के घोंसले भी दिए गए हैं। ऊपरी शाखावलम्बी घोंसले के नीचे ही एक मकड़े का घोंसला है जो अपूर्व रूप का है। उसे देखकर मकड़े की रचना कहना कठिन हो सकता है। किन्तु वह यथार्थतः मकड़े का घोंसला ही है। मकड़ा अपनी अंतर्वृत्ति से ही टहनी में लगे बीजों के सिरों पर चिपकी रहने वाली वृन्तीय (भेंटी से संबद्ध) पंखुड़ी लेता है जो उन्नतोदर (बीच में उठी हुई) होती हैं। ऐसी कई बीजदानी पंखुड़ियाँ लेकर वह उन्हें परस्पर आबद्ध करता है। इन्हें परस्पर बाँधने के लिए रेशमी सूत्र (जाले) का प्रयोग करता है। इसी के भीतर अन्डे रक्खे जाते हैं।

इसी चित्र में एक पत्ती भी दिखाई पड़ती है जिसके ऊपर अनेक पत्तियों के खंड संगृहीत हैं जिससे एक मामूली शङ्कुवत उल्टे लट्टू समान रूप बनता है। यह भी एक मकड़े की ही रचना है। इसे तो उपर्युक्त दोनों ही रचनाओं से अधिक कौशलपूर्ण कहा जा सकता है। पहले नमूने में तो मकड़े ने अपने जाले से ही एक खोखला घोंसला बना लिया है, दूसरे नमूने में मकड़े ने अनेक उन्नतोदर बीजदानी पंखुड़ियों को चुनकर एकत्र आबद्ध किया है। उनके कोरों को अपने जाले से बाँधकर एक खोखला घोंसला बना

लिया है। उसमें केवल भीतरी तल में कोमलता लाने के लिए जाले का अस्तर लगाना आवश्यक है जिससे उपयुक्त शिशु-पालन गृह बन जाय। किन्तु तीसरे नमूने में घोंसला बनाने की क्रिया यथेष्ट अग्रसर हुई है क्योंकि उसकी रचना अत्यधिक टुकड़ों को एकत्र कर हुई है। उन्हें एक दूसरे के ऊपर बड़े ढंग से व्यवस्थित किया गया है। उसे यथेष्ट श्रमसाध्य कार्य कहना चाहिए। यदि केवल पत्तियों के टुकड़े एकत्र जुटाना और परस्पर आबद्ध करना भर होता, तब भी श्रमपूर्ण कार्य होता।

एक पादशिखी मकड़ा पश्चिमी द्वीप-समूहों में होता है। उसके पैरों में कड़े बालों रूप की विचित्र कलंगी होती हैं। इसके पैर बड़े लम्बोतरे होते है तथा उदर भी लम्बा और बोझिल होता है। इसके शरीर की लम्बाई डेढ़ इञ्च होती है, उसमें उदर की ही लम्बाई दो-तिहाई होती है। उदर की औसत मोटाई $\frac{5}{6}$ इञ्च होती है। वह लगभग एक समान ही पूरी लम्बाई में मोटी होती है। अतएव उसका यह अंग ठोस तथा भारी होता है। इस मकड़े का रङ्ग भूरा होता है और उस पर चमकीले पीले रङ्ग के गोल धब्बे होते हैं। इसके अतिरिक्त उसी रङ्ग की अनेक पट्टियाँ भी विशेषतया उदर के अग्रभाग में होती हैं। उदर के अधोतल में दो मोटी पीले रङ्ग की आड़ी पट्टियाँ होती हैं। वक्ष का रङ्ग गहरा लाल होता है। उस पर धूसरयुक्त पीले रङ्ग के छोटे रोम भी आच्छादित होते हैं। वे रोम इतने घने होते हैं कि वक्ष का गहरा रङ्ग बहुत अधिक ध्यान से निकट से देखे बिना ज्ञात ही नहीं हो सकता। किन्तु प्रत्येक पार्श्व में तीन काले वर्गाकार धब्बे होते हैं। मध्य में भी एक काला धब्बा होता है। इस मकड़े में विषाक्त जबड़े होते हैं जिनका रङ्ग चमकीला गहरा काला हाता है तथा उनके छोरों पर वक्रित दाढ़ भीतर की ओर झुकी होती है। वक्ष के सम्मुख ठीक

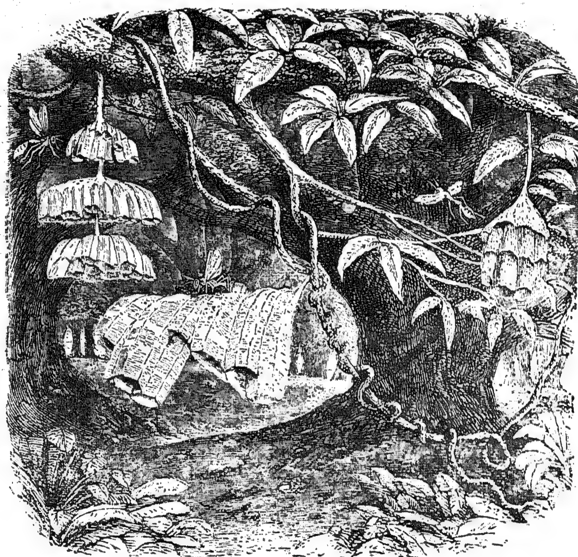
आगे की ओर आठ आँखें होती हैं। उनमें सबसे छोटी चार तो मध्य में सन्निकट ही बनी होती हैं और एक वर्ग सा बनाती हैं और सबसे बड़ी चार आँखें प्रमुख रूप में एक बड़ा आयत सा बनाती हैं जिसके भीतर छोटी आँखों का वर्ग होता है।

इस मकड़े के पैर लंबोतरे होते हैं। पहले जोड़े, जो सबसे लम्बे होते हैं, ढाई इञ्च लम्बे होते हैं। दूसरे जोड़े फैलाने पर साढ़े चार इञ्च लम्बे होते हैं। सबसे बड़ी विचित्र बात उसका नाम देनेवाली बात है। पहले, दूसरे और चौथे जोड़े पैरों में घने बालों का गुच्छ होते हैं। पहले जोड़े में प्रत्येक पर दो रोम-गुच्छ होते हैं, अन्यों पर एक-एक ही गुच्छ होते हैं। तीसरे जोड़े पैर अन्यों से छोटे होते हैं वे गुच्छहीन भी होते हैं। पैरों का रङ्ग चमकीला पीला भूरा होता है और रोम-गुच्छों का रङ्ग गहरा काला होता है। अतएव इनकी रङ्ग विभिन्नता विचित्र दिखाई पड़ती है। इस मकड़े द्वारा बड़े आकार के कोएनुमा अंडाकार घोंसले निर्मित होते हैं जिनका चित्र दिया गया है।

झिल्लीपंखीय कीटों के निर्मित छपहल (षट्भुजीय या षट्तलीय) कोष्ठकों के तीन प्रमुख नमूने चित्र में दिए गए हैं। इनमें मध्यवर्ती घोंसला कदाचित सब से भव्य है। यह इकारिया प्रजाति के कीटों द्वारा निर्मित है। चित्र में दिए हुए सभी कोष्ठकों के आकार 'षट्कोण हैं। प्रत्येक भुजा के कोण बिल्कुल उभड़े हुए और स्पष्ट हैं। इन्हें कीट अपने कौशल से इस विशेष आकार के घोंसले बनाता है। इसमें प्रयुक्त पदार्थ बहुत ही 'थोड़ा होता है। इसकी दीवालें लिखने के कागज समान ही पतली होती हैं। उसकी सामग्री अत्यन्त नर्म होती है क्योंकि घोंसले के भार से ही उसका रूप झुक गया होता है किन्तु इनमें किसी भी कोष्ठक का दूसरे कोष्ठक से सन्बम्ध तीन से अधिक पहलों या किनारों से नहीं

होता। अधिकांश का तो दो ही किनारों या पहलों से परस्पर सम्बन्ध होता है। बिल्कुल बाहरी कोष्ठक का तो एक ही पहल या किनारे से सम्बन्ध होता है। पाँच किनारे स्वतंत्र या पृथक ही होते हैं।

मध्य के घोंसले में प्रयुक्त सामग्री कई प्रकार की ज्ञात होती है। उसमें धूमिल तथा गहरे रङ्ग की एकान्तर रूपी मुद्रिकाएँ कोष्ठक को आवेष्ठित रक्खे दिखाई पड़ती हैं, उसी से प्रयुक्त पदार्थ की विभि-



मिशोसिटेरस इकारिया रैफिगेस्टर

न्नता प्रकट होती है। इस घोंसले का बनाने वाला कीट मझोले आकार का होता है और उसका रङ्ग धूसरमय काला होता है, उस पर पीलेपन युक्त श्वेत रङ्ग की पट्टियाँ होती हैं। उदर यथेष्ट पुष्ट और

नोकीला होता है तथा एक भूरे से दंड द्वारा वृक्ष से सम्बद्ध होता है। यह नैटाल में पाया जाता है।

चित्र में बाईं ओर ऊपरी कोने में तिहरे घोंसले को शाखा से लटका देखा जा सकता है। यह एक कीट की रचना है जिसका वैज्ञानिक नाम 'मिशोसिटेरस लेबिएटस' है। पूर्व वर्णित कीट के घोंसले की ही भाँति यह भी एक पतली किन्तु यथेष्ट लम्बी भेंटी या बन्धन या लटकन-सूत्रों द्वारा एक शाखा से अवलम्बित है। कोष्ठकों के मुख अधोवर्ती हैं।

साधारणतया कोष्ठकों का गुट्ट एकाकी होता है किन्तु कभी-कभी अधिक पूर्ण घोंसला बना मिलता है जिसमें चित्र में प्रदर्शित ढङ्ग के तीन गुट्ट हो सकते हैं जिनमें प्रत्येक मध्य के एक बन्धन-सूत्र द्वारा ऊपर के गुट्ट से आबद्ध होता है। यह विधि घोंसला लटकाने के लिए भयानक प्रतीत हो सकती है, परन्तु यह साधारण ततैया के उस प्रबन्ध से विशेष भयानक नहीं होती जिसमें कोष्ठकों के गुट्ट के गुट्ट दूसरे गुट्ट से उस कागज समान पदार्थ के बने स्तम्भों से बँधे होते हैं जिनसे कोष्ठकों की रचना हुई होती है। इस कीट का रङ्ग भूरा होता है।

घोंसलों का तीसरा नमूना एक कीट का बनाया है, जिसका वैज्ञानिक नाम 'रैफिगैस्टर गिनिएंसिस' है। यह पश्चिमी अफ्रीका में पाया जाता है। घोंसले में लम्बे कोष्ठकों के गुट्ट होते हैं जो एक बन्धन-सूत्र द्वारा लटके होते हैं। घोंसला बनाने में प्रयुक्त पदार्थ अत्यन्त कोमल और भंजनशील होता है। वह पतंग बनाने वाले कागज से भी दुर्बल या चित्रों की रक्षा के लिए ऊपर लगाए रखने वाले या ट्रेसिंग पेपर से भी अधिक झाँझर (क्षुद्र रंध्रमय) होता है। कोष्ठक इतने पतले होते हैं कि उनके मध्य से प्रकाश पार कर चमक सकता है। तनिक भी दबाव से वह दब जाता है।

प्रत्येक कोष्ठक आधारतल में छोटा होता है और मुख की ओर क्रमशः बड़ा होता जाता है।

इस कीट के कोष्ठक एक दूसरे के चारों ओर संगठित होते हैं फिर भी शंकु-आकार रक्षित रखते हैं। मध्य के कोष्ठक उतने ही गोल होते हैं जितने बाहरी कोष्ठक। उनके मुख भी गोलाकार होते हैं। इस घोंसले का निर्माता कीट कुछ लम्बा होता है। उसकी लम्बाई एक इञ्च होती है। उसका रङ्ग धूमिल पीला होता है। उदर अधिक लम्बोतरा होता है तथा उतने लम्बे दंड से आबद्ध होता है। इस कीट का घोंसला चित्र में दाहिनी ओर दिखाया गया है जिसमें कुछ कोष्ठकों में इल्लियाँ विद्यमान हैं और प्यूपा (कोएदार रूप) धारण कर रही है। उनके मुख्य पर श्वेत आवरण हैं।

शाखा से लटके गृह बनाने वाले कीटों में एक पतिंगा होता है जिसका वैज्ञानिक नाम 'नेथोकैम्पा प्रोसेशनीया' है। यह बहुसंख्यक अंडे देता है। प्रायः बलूत के वृक्ष पर ही इसके अंडे दिए जाते हैं। उनसे उत्पन्न शिशु तुरन्त ही अपने लिए गृह बनाना प्रारम्भ करते हैं। इसके गृह में विभाजन नहीं होता तथा एक ही द्वार होता है। जब कैटरपिलर (पंतिगों की इल्ली) आहार के लिए बाहर जाता है तो वह निर्देशक पथ बुन लेता है। ऐसी व्यवस्था अनेक कैटरपिलर करते हैं किन्तु यह एकाकी बाहर जाने के स्थान पर एक दल रूप में ही चलता है मानों कोई सैनिक दल आहार-संचय करने निकला हो। इसलिए इन्हें दलचारी या 'जलूसगामी कहते हैं।

इस दल में एक केटरपिलर नेता होता है। उसके पीछे पंक्ति में एक या दो अन्य कैटरपिलर होते हैं। बहुसंख्यक होने पर ये प्रायः दोहरी पंक्ति बनाकर चलते हैं। कभी-कभी पाँच छः पंक्तियों का दल भी चलता है। वे एक दूसरे के बहुत अधिक निकट होते

हैं जिससे उनका जलूस अखंड रूप में चलता है। जब तक दर्शक बहुत निकट न हो, यह ज्ञात नहीं हो सकता कि कोई दल गति कर रहा है। एक भुनगे की इल्ली इस दलचारी कैटरपिलर का भक्षण करती है। इसका नाम कैलोसोमा साइकेफैंटा है। वह इन दलगामी कैटरपिलर के गृह में एक, दो या पाँच छः की संख्या में पायी जाती है। वे कैटर पिलर न तो कहीं भाग ही सकते हैं और न इस शत्रु का संहार कर ही सकते हैं, अतएव उनकी संख्या न्यून होती रहती है। कैटरपिलर आहार प्राप्त करने दलबद्ध बाहर जाते हैं और एक मात्र आश्रय, अपने गृह में आते हैं। वहाँ इनका भक्षण वह इल्ली करती है।

चित्र में दलगामी कैटरपिलर का शाखावलम्बी गृह दिखाया



दलगामी कीट का गृह

गया है। उसका मध्य भाग फाड़ कर दिखाया गया है जिससे ज्ञात

हो कि उसमें कहीं कोई विभाजन नहीं है। बीच में कैलोसोमा भुनगे की इल्ली है जो इन कैटरपिलर का भक्षण करती है। नीचे एक कैलोसोमा वयस्क भुनगे का चित्र दिया है। कैलोसोमा की इल्ली इतनी भयंकर भक्षक होती है कि वृक्षों के संहारक कीटों की इल्लियाँ नष्ट कराने में उससे बड़ी सहायता प्राप्त हो सकती है। वामन भुनगा (जिप्सी माथ) या 'बाम्बिकूस डिस्पर' नामक कीट की इल्ली वृक्षों का भयंकर नाश करती है। पत्तियों को खा-खाकर समाप्त कर वृक्ष की छाल के अन्दर छिप जाया करती है। एक वैज्ञानिक ने वृक्षों को इनके द्वारा नष्ट होते देखकर कहीं से कैलोसोमा कीट की मादा लाकर उस पेड़ पर रक्खा। उसने जब अंडे दिए तो उनसे उत्पन्न इल्लियों ने वृक्षभक्षक इल्लियों का कुछ ही समय में पूर्णतः सर्वनाश कर दिया। फिर वे स्वयं अन्यत्र इल्लियों की खोज में चली गईं।

एक कीट "कलई कीट" या लैकी कहा जा सकता है। इसका वैज्ञानिक नाम 'क्लिसियोकैम्पा न्यूस्ट्रिया' है। इसकी मादा जब अंडे देना चाहती है तो उन्हें किसी पतली डाली या टहनी पर उसके चारों ओर अँगूठी रूप में इस प्रकार रखती है मानो किसी नारी के बाहु में बाजूबन्द बँधा हो या कलाई में कड़ा हो। जब अंडों का यह गोला पूर्ण हो जाता है तो उन्हें एक प्रकार की चिकनाई से लेपित करती है। वह लेप शीघ्र ही सूख कर पूर्ण जल-अभेद्य तल बन जाता है। यह लेप इतना कड़ा होता है और अंडों को इस प्रकार परस्पर आबद्ध रखता है कि टहनी को सावधानी से पृथक काटा जाय तो पूर्ण अंडों की अंगूठीनुमा ढेरी पृथक की जा सकती है। इस लेप का ठीक उसी प्रकार प्रभाव होता है जैसे हम पीतल के बर्तनों पर कलई कराने पर खट्टेपन के कुप्रभाव को रोक सकते हैं या अन्य धातुओं पर कलई कर आर्द्रता से रक्षित रक्खा जा

सकता है। इसी कारण इस कीट का नाम ही 'कलई कीट' उचित जान पड़ता है।

वर्षा ऋतु में कलई कीट के कैटरपिलर अपने कौशेय (रेशमी) गृह में ही पड़े रहते हैं। केवल आहार प्राप्ति के लिए ही बाहर आते हैं। वे अपना मार्ग कभी नहीं भूलते क्योंकि वे जहाँ कहीं भी जाते हैं, एक रेशमी सूत्र मार्गचिन्ह रूप में बनाते जाते हैं। इस कीट की इल्ली विशेष चिह्नित होती है। उसके शरीर पर नीली, पीली तथा श्वेत रङ्ग की पट्टियाँ होती हैं किन्तु वयस्क भुनगे का रंग पीला ही होता है जिसमें कुछ थोड़े नारंगी रंग की झलक होती है और ऊपरी जोड़े के पंख पर दोनों ओर एक गहरे रंग की पट्टी होती है जिसमें दोनों ओर धूमिल रंग की किनारी होती है। इसकी जाति वृक्षचारी होती है परन्तु एक दूसरी जाति भूजीवी भी होती है।

यहाँ पर दिए चित्र में अनेक विचित्र घोंसले हैं जो लम्बोतरे षट्पहल कोष्ठकों के मिलने से बने हैं। ये कोष्ठक एक-दूसरे के बगल में हैं। इन्हें इकारिया प्रजाति के कीट निर्मित करते हैं। इनके घोंसले या कोष्ठक शृङ्खलाओं का निर्माण एक विचित्र नमूने पर है। पहले कीट शाखा से एक बन्धक-सूत्र उसी प्रकार के पदार्थ का आबद्ध करता है जिससे कोष्ठकों का निर्माण होता है। ये बन्धक-दंड पतले होने पर भी बड़े कड़े, ठोस और पुष्ट होते हैं। वे यथेष्ट भार सँभाल सकते हैं। इन घोंसलों की रचना में भारी बोझ होना आवश्यक होता है। इसके बाद वह तवैया की तरह एक साधारण कोष्ठक की रचना करता है। उसे बन्धक-दंड में आबद्ध रखता है तथा मुख अधोवर्ती होता है। पहले वह अपेक्षाकृत छोटा ही बनाता है। जब कोष्ठक लगभग पूर्ण लम्बाई प्राप्त कर चुका होता है तो दूसरा कोष्ठक उसके बगल में बनता है। इसी

तरह तीसरा, चौथा कोष्ठक बनता जाता है। प्रत्येक कोष्ठक आवश्यकतानुसार लम्बा रक्खा जाता है। आधार-स्थल का कोष्ठक पहले बना होता है, इसलिए बाद वाले कोष्ठक छोटे हो जाते हैं।



इकारिया के जनन-कोष्ठक

अंतिम छोर का कोष्ठक तो पहले कोष्ठक का चतुर्थांश लम्बा ही होता है। इसका रंग गहरा पीलापन मिश्रित भूरा होता है।

'इकारिया' के घोंसले में एक विचित्र बात देखी जाती है। उसके सभी कोष्ठकों का आकार समान होता है। मधुमक्खियों में विभिन्न आकार के कोष्ठक होते हैं। एक छत्ते में ही सब से बड़े कोष्ठक भावी रानियों के लिए होते हैं। सब से छोटे कोष्ठक श्रमिक

मधुमक्खियों का शिशु पालन गृह होते हैं। मध्यवर्ती आकार के कोष्ठक वे होते हैं जिनमें नर उत्पन्न होते हैं। ततैया और हड्डा के घोंसले या छत्ते की भी परीक्षा करने पर कोष्ठकों के आकार में विभिन्नता मिलती है। नर, मादा, या जिस प्रकार के कीट को जन्म धारण करना होता है उसके अनुसार विभिन्न आकार के कोष्ठक होते हैं। परन्तु इकारिया के कोष्ठकों का आकार (लम्बाई-चौड़ाई) एक-सा होना एक आश्चर्य की बात ज्ञात होती है। इकारिया का घोंसला चाहे जितना बड़ा हो या उसमें कोष्ठों की चाहे जितनी संख्या हों, उन कोष्ठकों का विस्तार समान होता है।

चित्र में नीचे एक पत्ती पर कोष्ठकों के गुट्ट बने हैं। पत्ती यथेष्ट बड़ी है और सूखने के कारण अपने ही बल से झुक गई है, यह पत्ती इकारिया को प्रिय ज्ञात होती है, क्योंकि इसके ऊपरी तल पर पन्द्रह घोंसले बने मिलते हैं। इनमें सभी कोष्ठक पूर्ण सीधे नहीं हैं, बल्कि कोमल पदार्थ से बने होने के कारण कुछ नीचे की ओर झुके हैं। इन घोंसलों के निर्मायक कीट का सिर बड़ा होता है और एक छोटा गोल उदर होता है। यह भारत का कीट है। ये घोंसले बरेली में प्राप्त हुए थे।

'एपोयका पैलिटा' जिस प्रकार के विचित्र घोंसले बनाता है वे दर्शनीय होते हैं। उनके विभिन्न घोंसलों के नमूने चित्र में दिए गए हैं, परन्तु वे सभी घोंसले एक स्थान पर ही प्राप्त नहीं हुए और न वे ठीक उसी स्थिति में लटके ही थे जिन रूप में ये प्रदर्शित किए गए हैं। उनके रूप की जो विचित्रता वर्णनीय है, उसे दिखाने के लिए उनकी स्थिति बदल कर चित्र में एक वृक्ष पर तुलनात्मक पर्यवेक्षण के लिए दिखाई गई है। कुकुरमुत्ते के आकार का मध्यवर्ती छत्ता तथा टहनी की छोर पर का छोटे कोष्ठक मंडलों का छत्ता प्राकृतिक स्थिति में रहा होगा। शेष के स्थान तथा स्थिति में परि-

वर्तन है। इस तरह के छत्तों में कोष्ठकों का मुँह सदा अधोवर्ती होता है। अतएव रूपरेखा समझने के लिए तिरछे या खड़े रूप में



एपोयका के घोंसले

रक्खे छत्तों की वास्तविक स्थिति अनुमान कर लेना चाहिए। इन छत्तों में बाईं ओर का छत्ता सब से अधिक प्रमुख है।

सब छत्तों पर दृष्टि डालते ही यह ज्ञात हो सकता है कि उन सब के रूप और आकार समान नहीं हैं। मध्य का बड़ा छत्ता दस इञ्च से अधिक व्यास का है। किन्तु उसी शाखा की छोर पर का छोटा छत्ता उसका अर्द्धांश चौड़ा ही होगा। अन्य सब मझोले आकार के हैं। रूप में भी भेद है। कुछ तो छपहल (षट्भुजीय)

हैं, कुछ आंशिक रूप में ही छपहल हैं। कुछ बिल्कुल गोल ही हैं, किन्तु ध्यान से देखने पर उनमें धूमिल रूप का कुछ षट्भुजापन आभासित हो सकता है।

तुलनात्मक रूप से देखने पर पहली बात यह है कि वे सभी ऊपरी तल पर कुछ न कुछ उन्नतोदर हैं। वे गोल हों, या छपहल हों, उन्नतोदरपन समान ही है। यह रूप उन्हें जल-अभेद्य रखने के लिए प्रदान किया होता है। यदि वर्षा की बूँदें उनके ऊपर ठहर सकें, तब तो सारी रचना शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाय।

ऊपरी तल उन्नतोदर होने का यह स्पष्ट ही अर्थ है कि भीतरी तल नतोदर होगा। क्योंकि सभी कोष्ठक प्रायः एक समान आकार के ही बने होते हैं। यथार्थ में ये छत्ते छिछली कढ़ाही समान होते हैं जिसकी दीवाल बड़ी मोटी होती है। उन्हें बहुत बड़े और सुडौल बने कुकुरमुत्ते की टोपी से मिलते रूप का समझना चाहिए। मध्यवर्ती छत्ता तो कुकुरमुत्ते के इतने अधिक अनुरूप है कि यदि उसे ऊजड़ और गीली भूमि पर रख दिया जाय तो उसे कुकुरमुत्ता समझने का ही धोखा हो जाय। उसका रंग भी पीलापनयुक्त भूरा होता है और तल अर्द्ध चिक्कण रूप का होता है जिससे रूप का और भी धोखा होता है।

बाह्य रूप में छत्तों में रंग का कुछ विभेद होता है। आठ नमूनों में से, अधिकांश कुकुरमुत्ते समान ही हैं किन्तु कुछ विभिन्न भी हैं। पीले भूरे सपाट रंग पर लाल चित्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। एक छत्ते का रंग लाल भूरा है और उसका तल खुरदरा है। कुछ दूसरे गहरे रंग के हैं। एक तो श्वेत सा ही है। केवल धूसरपन की झलक है। इन कोष्ठों में नवजात इल्ली का प्रायः एक सा आकार होता है। बड़े नर, रानी या छोटे श्रमिक सैनिक आदि का झगड़ा नहीं होता। इस कारण कोष्ठकों का आकार एक समान होता है।

अतएव कोष्ठकों की संख्या न्यून हो या अधिक, छत्ते की मुटाई एक-सी ही होती है। छत्ते का व्यास छोटा या बड़ा हो सकता है।

सभी छत्ते एक रूप से ही आबद्ध होते हैं। एक शाखा या टहनी उत्तरी तल में प्रविष्ट होती है। जब कोष्ठकों की संख्या-वृद्धि से छत्ते का आकार बढ़ जाता है तो मूल बन्धक-सूत्र दुर्बल प्रतीत हो सकता है। इस अवस्था में अन्य बन्धक-सूत्र बनाए जा सकते हैं। छोटे छत्ते तो किसी एक ही पतली टहनी से लटके हो सकते हैं, परन्तु यथेष्ट बड़े छत्ते तीन बिन्दुओं पर आबद्ध होते हैं जिनमें दो बन्धन मोटी शाखाओं पर ही होते हैं जो छत्ते के पार्श्व भागों को अवलम्ब दिए होते हैं तथा एक टहनी ऊपरी तल को अवलम्बित रखती है। छत्तों की आकृति पर उनके कोष्ठकों की न्यूनाधिक संख्या का प्रभाव नहीं पड़ता। आठ नमूनों में षटभुज या गोले आकार का विभेद कोष्ठकों की संख्या से प्रभावित नहीं है।

इसके वैज्ञानिक नाम 'एपोयका' का अर्थ संघजीवी है और पैलिडा का अर्थ धूमिल-रङ्ग है। यथार्थ में इसका रङ्ग फीका होता है। लम्बोतरे शरीर और बहुत धूमिल पीले रंग का कीट है। ज्ञात होता है कि पहले इसका चटक रंग रहा हो और गंधक का धुआँ देने से वह फीका पड़ गया है। पंखों का भी वैसा ही फीका रंग होता है। इतना साधारण रंगरूप रखने वाला कीट इतनी सुन्दर व्यवस्थित कोष्ठक-शृङ्खला की क्यों रचना करता है, यह जान नहीं पड़ता।

जन्तुओं के गृह-निर्माण में लटकनशील रूप मिलना एक साधारण प्रचलित व्यवस्था है। इनके वर्णन कई स्थानों पर दिए गए हैं। यहाँ पर कीटों द्वारा लटकनशील गृह-निर्माण की कुछ चर्चा की जायगी। कुछ कीट तो अपने लटकनशील गृह प्रौढ़ अवस्था प्राप्त होने पर बनाते हैं, परन्तु कुछ कीट अन्डे से उत्पन्न होते,

इल्ली अवस्था में ही बनाते हैं, या इल्ली से भी विकसित रूप, प्यूपा (प्रौढ़ अवस्था होने के पूर्व का रूप) की स्थिति में ही लटकनशील गृह-निर्माण कर सकते हैं।



इकोफिला विरेसीन्स एबिस्पा एफिप्यिम क्रिमेटोगैस्टर लिविसेप्स

कीटों में विवर-निर्माण में झिल्लीपंखीय वर्ग के कीटों (चींटी मधुमक्खी, ततैया आदि) को कुशल पाया जाता है। उन वर्गों के ही कीट लटकनशील गृह-निर्माण में भी प्रवीण होते हैं। आस्ट्रेलिया में एक कीट "क्रिमेटोगेस्टर लिविसेप्स" होता है। इसी तरह का एक कीट ब्राजील में भी होता है जिसे हब्शी कपालीय पिपीलिका (निग्रो हेड आंट) कहते हैं। उसका कारण यह है कि इसका घोंसला हब्शी के सिर की तरह होता है और बाहर की ओर उसे छोटे उभाड़ों युक्त देखा जाता है मानों हब्शी के सिर पर के घने बाल हों।

यह पिपीलिका जब भूमि पर दौड़ती है तो इसमें एक विचित्र बात यह होती है कि यह अपना उदर इतना ऊपर उठा लेती है कि वह पीठ के ऊपर मुड़ जाता है और वक्ष के ऊपर जा लटकता है।

इस कारण इसे क्षिप्तोदर या लटकनशील उदर का कीट कहते हैं। 'क्रिमेटोगैस्टर' शब्द का यही अर्थ है। इसका गृह ततैया के लटकनशील-गृह सा प्रतीत होता है किन्तु निकट से देखने पर अधिक पेचीदा मिलता है। उसमें भीतरी कोष्ठक की ओर निर्दित अगणित वक्रताओं तथा विकट व्यूह के जाल होते हैं।

पिपीलिकाओं की अन्य जातियाँ भी हैं जो अपने उदर खड़ा कर चलती हैं। मिरमिका किरबाई नामक वृक्षचारी पिपीलिका ऐसी ही होती है जो वृक्षों के ऊपर घोंसले बनाती है जिनकी रचना गोबर से होती है। गोबर को ही पतले रूप की पर्तों में बना लेने की कला इसे ज्ञात होती है। उसी को खपरैल की तरह एक-दूसरे के ऊपर चढ़ा सा रखकर अपना घोंसला बनाती है। उस पर एक पृथक गुम्बजनुमा छत होती है जो घोंसले के घेरे से बाहर तक चारों ओर फैली होती है। इसी तरह की दूसरी पिपीलिका फोर्मिका इलाटा भी उदर उठाकर चलने वालों में है और अपना घोंसला पंक तथा पत्तियों के मेल से घनी डालों में बनाती है।

एक पिपीलिका "इकोफिला विरेसीन्स" नाम की होती है। इसे हरित पिपीलिका या पत्रगृही कहते हैं। यह सूखी पत्तियों से अपना गृह बनाती है। यह यात्रियों को कभी-कभी बड़ी कष्टदायक होती है। वे अनजाने ही इसका कोई घोंसला छेड़ सकते हैं जो कहीं पत्तियों के अन्दर छिपा हुआ डालों में लटका पड़ा रहता है। वे घोंसले से ओले की तरह सिर पर बरसने लगती हैं। कुछ ही समय में यात्री का शरीर इनसे अभिभूत हो सकता है। वे शरीर के नग्न भागों से चिपट जाती हैं। इनका घोंसला आठ इञ्च व्यास का गोलाकार होता है। वह बड़े विलक्षण रूप में बना होता है। उसमें प्रयुक्त पदार्थ पत्तियाँ ही होती हैं जिन्हें काटकर मुख में चबाती हैं तथा लुगदी रूप में बना लेती हैं। यह कभी-कभी ततैया तथा हड्डा

द्वारा प्रयुक्त पदार्थ हो सकता है, परन्तु यह अंतर होता है कि उनके गृह-निर्माण में काठ के रेशों की लुगदी लगी होती है परन्तु इनके घोंसलों में हरी पत्ती की लुगदी प्रयुक्त हुई रहती हैं।

इस पदार्थ से बना घोंसला सबसे घने पत्तों के मध्य स्थित होता है और टहनियों से लटका नहीं होता, बल्कि पत्तियों से लटकता रहता है जो घोंसले के अन्दर सन्निविष्ट होती है और अनेक स्थलों पर घोंसले की बाहरी दीवाल से बाहर निकली होती हैं। इसके घोंसले का बाहरी भाग क्षिप्रोदर पिपीलिका (क्रिमेटोगैस्टर) के घोंसले से विशिष्टता का प्रमाण अपनी चिकनाहट तथा दीवालों की नियमितता द्वारा प्रकट करता है। इसकी एक जाति अफ्रीका में पाई जाती है। वे जब कभी छेड़ी जाती हैं, अपने घोंसले के बाहरी भाग पर इतनी अधिक संख्या में तथा अधिक वेग से दौड़ आती हैं कि ज्ञात होता है मानो पत्तियों के ऊपर वर्षा की बूँदें गिर रही हैं।

"फोर्मिका विस्पिनोसा" पिपीलिका मध्य अमेरिका में पाई जाती है। वह एक कपास वृक्ष के बीज द्वारा रेशमी कपास-सूत्रों का प्रयोग करती है। उसे स्पंज की तरह बनाकर गृह-निर्माण में प्रयुक्त करती है। रक्तस्राव होने पर उस वस्तु का उपयोग करने से स्राव का अवरोध हो जाता है। "फोर्मिका मार्डिकोला" नामक पिपीलिका "मिरमिका किरवाई" पिपीलिका के समकक्ष गृह-निर्माण में विचित्र पदार्थ का उपयोग करती है। यह घोड़े की लीद को इसके लिए प्रयुक्त करती है। यह या तो भूमि से कुछ ऊपर नरकुलों के तने से अपना घोंसला लटकाती है या किसी ताल वृक्ष के शल्यकीय तनों से लटका लेती है। ऐसी पिपीलिकाएँ भी हैं जो वानस्पतिक रोमों से अपना घोंसला बनाती हैं। "फोर्मिका मोलेस्टैंस" पिपीलिका अत्यन्त सूक्ष्म रोमों से गोलाकार घोंसला बुनकर विभिन्न वनस्पतियों के पत्रवृन्त (पत्तों की भेंटी) या गूमड़ों में बाँधती हैं।

आस्ट्रेलिया में एक ततैया वर्ग का कीट "एबिस्पा एफिपियम" नाम का होता है। इसका घोंसला बहुत बड़ा होता है। उसका व्यास तीन या चार इञ्च होता है। प्रवेश-द्वार मिलाकर इसकी ऊँचाई इससे अधिक ही होती है। घोंसला-निर्माण में यह मिट्टी को ही मुख में चबाकर तथा भली-भाँति गूँधकर प्रयुक्त करता है। उसे ढीला लसदार बनाकर विचित्र रूप में ढाल लेता है।

इसके घोंसले का बाहरी रूप विचित्र रूपरेखा प्रकट करता है। उसमें नली दिखाई पड़ती है जिसमें होकर कीट भीतर प्रवेश करता है। उसके बाहरी रूप की इस विचित्रता को छोड़कर खड़ी काट की जाय तो भीतर की रचना और भी अद्भुत दिखाई पड़ती है। द्वार-नली केवल प्रवेश-मार्ग नहीं होती, बल्कि घोंसले के भीतर एक इञ्च तक गई होती है। कदाचित वह नवजात शिशुओं को बाहर गिरने से बचाने के लिए होती है। जिस भाग से होकर यह गई होती है उसके नीचे घोंसले का पेटा लगभग चपटा होता है और सम्पूर्ण घोंसले का आकार एक अंगुश्ताने (अंगुलित्राण) के रूप का होता है जिसका मुख कठोर मिट्टी की बनी एक गोलाकार चपटी चकत्ती द्वारा बन्द होता है। घोंसले की छत से आबद्ध कोष्ठकों की एक तह होती है जो किसी विशेष क्रम या व्यवस्था पूर्वक नहीं होती। एक विचित्र बात यह है कि इस घोंसले या इसकी भीतरी रचना का निर्माण एक ही ततैया द्वारा हुआ पाया जाता है। आमेजन का "ट्रिपोक्सिलोन औरिफ्रांस" कीट भी इसी तरह द्वारनली युक्त घोंसला बनाता है किन्तु नली कुछ छोटी ही होती है।

एक ततैया "टेटुआ मोरिओ" नाम की होती है। इस कीट का उदर से वक्षस्थल को जोड़ने वाला भाग लम्बे पतले दण्ड रूप में हुआ रहता है। वैसी ही रूपरेखा 'यूमेनीज' तथा अन्य कीटों की होती है। इस ततैया का घोंसला कागजी पदार्थ से बना होता है

जिसका प्रयोग अनेक ततैया द्वारा होता है। इसमें विशेषता यह होती है कि इसमें प्रयुक्त पदार्थ इतना दृढ़ और चिकना होता है कि वह श्वेत दफ्ती सा जान पड़ता है। इसके घोंसले का आकार गोल-शीर्ष के शंकु के साथ चपटे पेंदे वाला होता है। मुट्ठी या हस्तक के बिना मुग्दर सा रूप इसे कह सकते हैं। तोलने की मन, आधे मन की बड़ी बाट भी इस तरह की होती है। यह कीट मध्य अमेरिका के अनेक भागों में पाया जाता है। गाइना में इसे 'गोरों की चुरुटदानी' कहा जाता है। इसका रूप चुरुट पीने की नली सा प्रतीत होने से ऐसा नाम पड़ा है। बाहरी दीवालें इतनी दृढ़ तथा चिकनी होती हैं कि वे किसी प्रकार की ऋतुविषमता का सामना कर सकती हैं। उन भागों में प्रायः बहने वाली भीषण आँधी, तूफान या भारी वर्षा में से किसी का भी कुछ प्रभाव उस पर नहीं पड़ सकता।

कोष्ठकों की अट्टालिकाएँ विभिन्न हो सकती हैं। यह एक विचित्र बात होती है क्योंकि कोष्ठकों के बनने के पहले ही फर्श बना ली जाती है। कोष्ठकों को बनाना प्रारंभ करने के पहले ही कितनी मञ्जिलों की फर्श बना ली जाती है या फर्श के तैयार होते ही कोष्ठक बनने प्रारम्भ हो जाते हैं, यह विवादग्रस्त है। ये फर्शें पूर्णतः उन दीवालों तक होती हैं जिससे वे सब किनारों द्वारा बँधी होती हैं। उन सब के मध्य से जाते हुए पृथक छिद्र द्वारा ही कीट उन तक पहुँच सकता है।

इसके घोंसले में प्रयुक्त पदार्थ पतली भूरी दफ्ती समान ज्ञात होता है। अन्य ततैया के कोष्ठकों की भाँति इसके कोष्ठकों का मुख भी नीचे की ओर होता है जिससे एक अट्टालिका के कोष्ठकों में पोषित होने वाले शिशुओं को आहार पहुँचाने वाली परिचारिका निचले कोठे पर उन तक अपनी पहुँच कर सके। एक घोंसले की

काट करने पर बीच के छेद से परिधि तक एक पंक्ति में बीस कोष्ठक देखे गए। इससे प्रत्येक अट्टालिका में कोष्ठकों की औसत संख्या ज्ञात हो सकती है। बीच का छिद्र बिलकुल मध्यवर्ती नहीं पाया गया था। इस कारण कोष्ठकों की कुछ पंक्तियाँ अन्य कोष्ठक-पंक्तियों से छोटी हो सकती थीं।

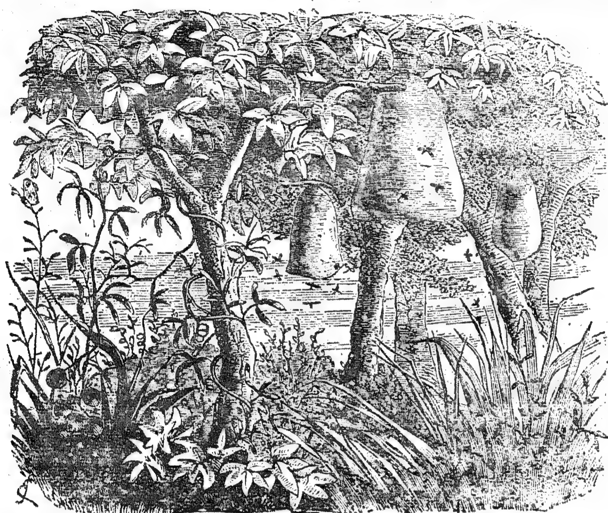
ततैया की कितनी ही जातियाँ होती हैं जिनमें कुछ भूतल पर विवर बनाकर रहती हैं। उन्हें विवरवासिनी कह सकते हैं। उनके विपक्ष कुछ जातियाँ वृक्षवासिनी होती हैं। जिन जातियों की ततैया विवरवासिनी होती हैं उनकी स्पष्ट पहचान यह है कि उनके श्रमिकों और मादा में मुच्छीय बाल का रङ्ग काला होता है, परन्तु वृक्षचारी ततैया की जातियों में मूँछ वाले व लम्बे बालों का रङ्ग नर और मादा दोनों ही में पीला होता है।

एक ततैया "चारटेरगस निडुलैंस" नाम की होती है। इसे दफ्ती ततैया भी कह सकते हैं। इसका घोंसला बाहरी रूप में ऊपर वर्णित टेटुआ कीट के समान ही होता है परन्तु ध्यान से देखने पर इसमें विशेष बात यह होगी कि इसके जिस छिद्र में डाल प्रविष्ट होती है, वह बहुत बड़ा होता है जिससे यह घोंसला हवा में बहुत स्वतन्त्रता से हिलडुल सके।

अनेक नमूनों में इन घोसलों की ऊपरी मोटी छोर में ही डाल प्रविष्ट करने वाला छिद्र होता है परन्तु कुछ नमूनों में दफ्ती की तरह के किसी पदार्थ से इस तरह की वस्तु बनी ज्ञात होती है मानों एक अँगूठी बनाकर घोंसले के ऊपर जोड़ दी गई हो और उसी में डाल से लटका कर घोंसला रक्खा गया हो।

चारटेरगस के घोंसले विभिन्न आकार के होते हैं। प्रत्येक घोंसला असीम विस्तार करने में समर्थ ज्ञात होता है। अपने इस लटकनशील घोंसले को ततैया जिस विधि से बड़ा कर सकती है,

वह सरल और प्रभावोत्पादक है। जब घोंसला के निवासियों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि वे स्थान नहीं पाते और कोष्ठकों की एक नई पंक्ति आवश्यक होती है तो ततैया बड़ी सुविधा में ही परिवर्द्धन का कार्य कर लेती हैं। उससे घोंसले का सुडौलपन भी



चारटेरगस निडुलैंस

बिगड़ने नहीं पाता। घोंसले के पेंदे से प्रारम्भ कर वह कोष्ठकों की नई पंक्ति बना लेती हैं। उसमें इसका ध्यान रखती हैं कि परिधि की ओर एक या दो पंक्ति अधिक हो जाय जिससे लम्बाई की तुलना में व्यास अधिक हो जाय। इसके बाद वे बाहरी दीवाल में भी कुछ जोड़ देती हैं जो लंबोतरा हो जाता है जिसके अन्दर नई अट्टालिका भी आ जाती है। इसके बाद पेंदे को ढक दिया जाता है। यह फर्श ही भावी नई अट्टालिका की छत हो सकती है।

उनके घोंसले की व्यवस्था तथा रूप-रेखा बिगड़ने न देकर बढ़ती हुई आबादी को आश्रय देने का यह उत्तम ढंग होता है। उनके सम्मुख गृह के अभाव का प्रश्न खड़ा नहीं होता।

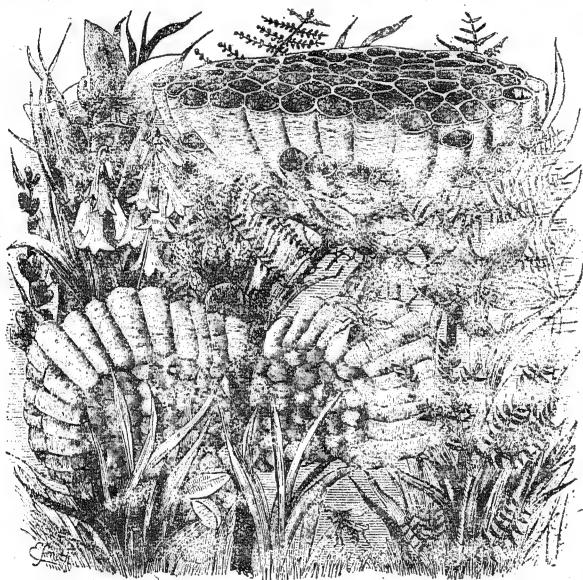
चारटेरगस का घोंसला स्थायी रचना होती है। वह स्थायी गृह का रूप धारण किये होता है। इसी कारण उसमें वृद्धि कर सकने की व्यवस्था रक्खी जाती है। अन्य ततैया तो एक ऋतु के लिए अपना गृह बनाकर दूसरे ऋतु में सन्तानोत्पादन की समस्या पुनः सामने आने पर नया गृह-निर्माण करती हैं। चारटेरगस इस झंझट से मुक्त रहती है। इसके घोंसले की लम्बाई एक फुट होती है तथा उसी अनुपात में चौड़ाई होती है। इससे छोटे या बड़े घोंसले पाये जा सकते हैं। कहीं-कहीं तो भीमकाय घोंसला पाया जाता है जहाँ निवासियों को बाधा नहीं पहुँचाई गई होती और वहाँ का वातारण घोंसले की सतत वृद्धि में सहायक होता है। 'चारटेरगस' शब्द का अर्थ कागज बनानेवाला होता है।

चारटेरगस का एक वृहदाकार घोंसला सिंहल (सीलोन) में पाया गया था। यह एक विशाल तालपत्र के भीतरी भाग से आबद्ध था। इसकी लम्बाई छः फुट थी। छः फुट लम्बे घोंसले की कल्पना करना साधारण बात नहीं है। इसकी अपेक्षाकृत चौड़ाई का भी अनुमान कर आयतन का विस्तार समझा जा सकता है। इतना बड़ा घोंसला तो किसी साधारण दरवाजे में से भी नहीं ले जाया जा सकता। छः फुट लम्बाई का मनुष्य तो विरला ही होता है। जिसके डीलडौल से दर्शक चकित हो सकता है। उतनी लम्बाई की एक कीट रचित वस्तु घोर विस्मय की ही बात है। घंटाकार रूप के कारण इतनी लम्बाई का घोंसला और भी वृहद् रूप का ही होता है।

वेल्टवुट नाम के वैज्ञानिक ने उल्लेख किया है कि इससे मिलती-

जुलती जाति की ततैया का ही एक घोंसला पेरिस के संग्रहालय में है। उसका व्यास तो आठ इञ्च ही है, परन्तु वह बाहर से इतना चिकना और कठोर है कि बिल्कुल पकाई हुई मिट्टी का बना ज्ञात होता है।

पालिस्टीज नामक कीट के घोंसले अनेक रूपों के होते हैं। उनकी विभिन्नता चाहे जैसी हो, परन्तु एक समान बात सबमें



पालिस्टीज (ऊपरी छत्ता वस्तुतः अधोमुखी होना चाहिये)

अवश्य होती है कि कोष्ठक खुले रूप के ही होते हैं, उनके ऊपर कोई ढक्कन नहीं होता। अतएव जो ततैया अपने कोष्ठकों को ऋतु-भीषणता से रक्षा के लिए ऊपर से आच्छादित रखने की व्यवस्था

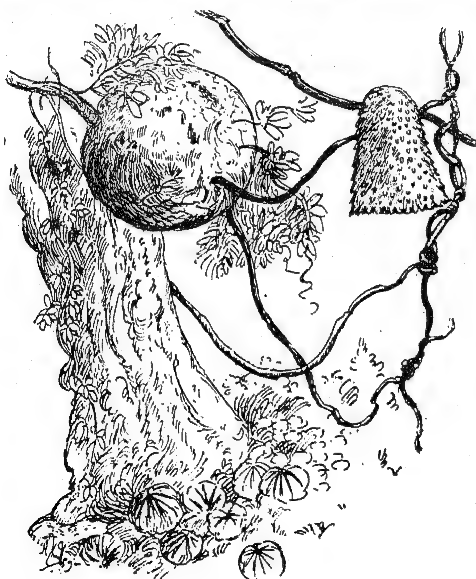
रखती हैं, उनकी अपेक्षा इसके कोष्ठक अधिक पुष्ट पदार्थों से बने होते हैं।

इन जातियों में से अनेक लगभग गोलाकार घोंसला बनाती हैं और उसे पार्श्ववर्ती रूप में शाखा, तने या दीवालों से आबद्ध रखती हैं किन्तु एक ऐसा विचित्र घोंसला पाया जा सका है जो पूर्णतः विभिन्न ढंग का है। वह छत्ता ऐसा दिखाई पड़ता था मानों नर्म, लचकदार हो और एक डाल से शिथिल रूप में लटका हो। इनके कोष्ठक मधुमक्खियों की तरह आकार और रूप रखते थे, किन्तु रंग गहरा भूरा था। मधुमक्खियों की तरह दोनों तरफ कोष्ठक बने थे। छत्ते लम्बे और पतले थे, मानों एक बड़े छत्ते के तीन टुकड़े काट लिए गये हों। ये छत्ते थाईलैंड (श्याम) से प्राप्त हुए ये।

बर्रे या ततैया भी मधुसंचय करनेवाली जातियाँ रखती हैं, इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त होने की कथा बड़ी विचित्र है। १७८० ई० में डोन फेलिज डी अजारा नाम का एक स्पेनीय अफसर कप्तान के दर्जे से बढ़ाकर लेफ्टिनेंट-कर्नल बना दिया गया था। वह स्पेन और पुर्तगाल के मध्य उपनिवेशों की सीमा के सम्बन्ध में खड़े हुए विवाद का निराकरण करने के लिए पैरागुए भेज दिया गया। उस समय इस देश के बहुत भाग अज्ञात थे। डी अजारा ने पैरागुए का मानचित्र तैयार करने का एक भारी कार्य अपने सिर पर लिया। उसे निरन्तर उन भागों की यात्रा करती रहनी पड़ी जहाँ पहले कभी गोरों की पहुँच नहीं हो सकी थी। मूलवासियों के विरोध तथा भीषण हिंसक जन्तुओं का भय था। उसने तीस वर्ष तक यह कार्य जारी रखकर अपना उद्देश्य पूर्ण किया। इसी दौड़-धूप में उसे इन भूभागों के दृश्यों, जीव-जन्तुओं को भी देखने सुनने का अवसर मिला। फलतः योरप लौटने पर १८०१ ई० में उसने अपना यात्रा-वर्णन प्रकाशित किया। अनदेखी बातों का वर्णन पहले-पहल पाकर

पाठकों को बहुत-सी बातें अनर्गल ज्ञात हो सकती हैं। डी अजारा के वर्णनों की भी यही दशा हुई। उसका यह कथन तो अत्यन्त ही तथ्यहीन माना गया कि मधुसंचय करनेवाली ततैया भी होती है। किन्तु जिस कथन के बल पर डी अजारा का सारा वर्णन ही कपोल-कल्पना घोषित किया जाने लगा था, उसकी सत्यता आज का विज्ञान हमें पूर्णतः प्रामाणिक रूप में बताता है। आज हम जानते हैं कि ततैया की कुछ जातियाँ मधुसंचयी होती हैं।

एक ततैया "मिरापेट्रा स्कुटिलारिस" नाम की होती है जो मधुसञ्चयी वृत्ति रखती है। इसके घोंसले का वर्णन अन्यत्र दिया



नेक्टारीनिया मिरापेट्रा

गया है। इसके बाहरी तल पर कीलों की तरह उभाड़ होना विशे-

षता होती है जिसे सिरों पर नोकीला पाया जाता है। कदाचित मधुप्रिय अन्य जन्तुओं से रक्षा के लिए यह प्रबन्ध होता है। ऊपरी भागों में तो थोड़े ही कीले होते हैं किन्तु नीचे घने होते जाते हैं। निचले भागों में वे इतने अधिक हो गए होते हैं कि उनके मध्य उङ्गली नहीं डाली जा सकती। यह घोंसला भूमि से तीन-चार फुट से अधिक ऊँचाई पर नहीं होता। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि शत्रु से रक्षा इन शल्य की उभाड़ों का उद्देश्य नहीं हो सकता। इसी के निकट प्राप्त होने वाले दूसरे घोसलों में ऐसे कीले बाहरी तलों पर नहीं होते किन्तु वे दूसरी जाति की मधुसञ्चयी ततैया द्वारा ही बनाए गए होते हैं। किन्तु मिरापेट्रा के घोंसले के उभाड़ों का उद्देश्य बरसाती की भाँति वर्षा से द्वार-मार्गों की रक्षा तथा उसका रूप छिपाना हो सकता है। कहीं पर ऐसे उभाड़ों की जड़ में ही द्वार होते हैं जिन्हें सहज पहचाना नहीं जा सकता। इस घोंसले की लम्बाई सोलह इञ्च तथा व्यास सब से चौड़े भाग में एक फुट होता है।

ब्राजील के जङ्गलों में "नेक्टारिनिया एनालिस" नाम की ततैया भी होती है। इसका घोंसला बड़ा गोलाकार होता है और शाखा से लटका रहता है। यह घनी पत्रावलियों के मध्य छिपी पड़ी रहती है। इस घोंसले का रूप उपर्युक्त घोंसले समान सुन्दर नहीं होता। कोष्ठकों की कोई ठीक व्यवस्था नहीं होती, मानो किसी योजना को लेकर यह उन्हें नहीं बनाती। जहाँ-तहाँ वे बेढंगे स्थानों पर बने होते हैं। केवल इसका ध्यान होता है कि बाहर से एक ही आवरण के अन्दर उन्हें रखना है। घोंसले के इस गेंदाकार रूप के विचार से ही कोष्ठक भीतर बनते हैं।

इस घोंसले में ततैया के लिए प्रवेश-द्वार बहुत छोटा होता है। यह आश्चर्य होता है कि भीतर वह किस प्रकार अङ्ग छिलने बिना

ही प्रवेश कर पाती हैं। यह ततैया मधुमक्खी के समान रूप रखती है और बहुत छोटी होती है। उसकी लम्बाई चौथाई इञ्च भी नहीं होती। वह एकाकी-जीवी मधुमक्खी समान जान पड़ती है।

यह घोंसला मिरापेट्रा के घोंसले समान भूमि के निकट थोड़ी ऊँचाई पर ही होता है और पतली टहनियों तथा लम्बी कोमल पत्तियों से लटका रहता है। ये पत्तियाँ उस घोंसले के अन्दर सम्मिलित कर ली गई होती हैं। कभी-कभी वे घोंसले के भीतर से होकर बाहर तक निकली पड़ी होती हैं। किन्तु इस घोंसले में कीलों की तरह उभाड़ों का सर्वथा अभाव होता है। इसकी बाहरी दीवाल बहुत पतली और भञ्जनशील ही होती है। कोई कीटभक्षी व मधुभक्षी शत्रु उसे मधु या कीट के लोभ में तोड़ना चाहे तो कोई भी कठिनाई नहीं हो सकती। इसके कोष्ठकों की रचना अधिक दृढ़ दीवालों द्वारा हुई होती है।

मधुमक्खियों सी जङ्गली जातियाँ अपना छत्ता वृक्ष के खोखलों में बनाती हैं। यह वृत्ति प्रायः सार्वभौम सी है। मधु के लोभी मनुष्य, बन्दर, पक्षी, मधु-बिज्जू, भालू आदि सभी जानते हैं कि मधु से भरे इनके छत्ते कहाँ स्थित हो सकते हैं। किन्तु उष्ण कटि-बन्धीय अमेरिका में कुछ जंगली मधुमक्खियों को इस सार्वभौम व्यवस्था में परिवर्तन किए पाया जाता है।

यह जंगली मक्खी 'ट्रिगोना' नाम से प्रसिद्ध है। यह वृक्ष-कोटरों से छत्ते न बना कर शाखाओं की चोटी पर बनाती है किन्तु उन्हें कोटर या खोखले में न बना कर एक सेब के आकार में बना कर टहनी की बिल्कुल फुनगी से लटका देती है जिससे प्रवीण वृक्ष-चारी बंदर भी किसी प्रकार प्राप्त न कर सकें। यह आश्चर्य की बात है कि यह मधुमक्खी सार्वभौम सी पद्धति को बदल कर कैसे इस रूप में अपना घोंसला रखती है। इससे बहुत अधिक मिलती-

जुलती जाति की मधुमक्खी उन भूभागों में ही रहने पर साधारण रूप में वृक्ष के खोखलों में ही छत्ता बनाती है।

पोलिस्टीज कीट अपने कोष्ठक खुले रूप में ही बनाते हैं। उनके ऊपर कोई आवरण नहीं होता। इनके घोंसलों के आकार, कोष्ठकों की योजना तथा प्रयुक्त पदार्थों में विभिन्नता होती है। कुछ तो अपने कोष्ठकों को शाखाओं से इसी प्रकार आबद्ध रखते हैं मानों मधुमक्खियों के कुछ छत्ते टहनियों से इस तरह बाँध दिये गये हों कि उनके ऊपरी भाग में छेद हो और टहनी उसके मध्य से होकर चली गई हो। दूसरे अपने घोंसले मिट्टी द्वारा गोलाकार बनाते हैं और उन्हें झरबेरियों की तरह डाल से आबद्ध रखते हैं। किन्तु एक जाति कोष्ठकों की रचना बहुत सुन्दर करती है। उसके छत्ते भव्य होते हैं। उनके शाखा में बाँधने की विधि भी अद्भुत होती है।

प्रायः छत्तों का रूप गोला-सा होता है। कोष्ठक गेंदे के फूल समान चक्रीय रूप के होते हैं। उनका आधार-तल अपेक्षाकृत छोटा होता है। एक कोष्ठक को पृथक् लेकर देखने से तो आकार की यह विचित्रता नहीं जान पड़ती, परन्तु छत्ते रूप में वे ऐसे सुन्दर व्यवस्थित होते हैं कि ऊपरी तल फैला हुआ होता है तथा निचला तल उससे कम होता है। बीच के कोष्ठक अन्यों की अपेक्षा बड़े हो सकते हैं। कुछ बन्द हो सकते हैं, जिसका अर्थ यह है कि उनमें कीट विद्यमान हैं। किनारों के कोष्ठक छोटे और खुले हो सकते हैं जिसका अर्थ यह है कि उनमें कीट विद्यमान नहीं हो सका है और वे छोटे भी होते हैं। प्राकृतिक अवस्था में रहने पर उन्हें भी कीट लम्बा बनाये होता है।

छत्ते का अधिकांश रूप गोला ही होता है जिससे वे सूखे हुए सूरजमुखी या बड़े गेंदे के फूल से ज्ञात होते हैं। परन्तु अन्य रूप

भी हो सकता है। गोल की जगह अधिक लम्बोतरा या दूसरा रूप पाया जा सकता है। ये छत्ते सीधे शाखा से आबद्ध नहीं होते, बल्कि एक दंड पर फैले होते हैं और वह दंड ही शाखा से बँधा होता है। एक चूल की भाँति सारे छत्तो का भार उस बंधक दण्ड पर अवलम्बित होना विस्मय की बात होती है। उस बन्धक दण्ड की रचना केवल घने तथा दबे रूप में बनाने से होती है, अन्यथा उसमें भी वही पदार्थ प्रयुक्त होता है जो छत्तों में प्रयुक्त रहता है।



संघबद्ध कीटों का गृह-निर्माण

छत्ता बनाने वाली मधुमक्खी सङ्घबद्ध कीटों में विशेष प्रसिद्ध है। इस पर मनुष्य का ध्यान मधु के समान सुस्वाद पदार्थ पाने के कारण आदिम काल से रहता आया होगा। यों तो कितने अन्य कीट भी हमारे लिए लाभदायक होंगे किन्तु हमें उनके कार्यों का पता नहीं, अतएव वे हमसे अज्ञात ही रहते हैं। किन्तु मधुमक्खी तो हमें मधु और मोम दो पदार्थ प्रत्यक्ष प्रदान करती है।

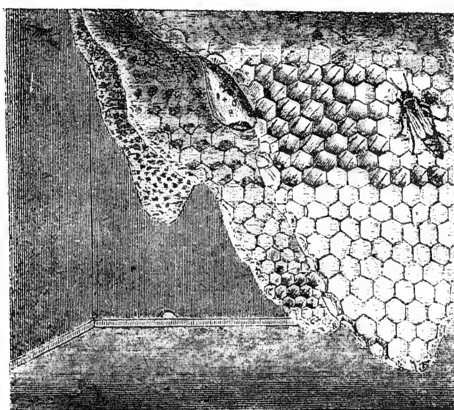
इन पदार्थों के कारण इस पर दृष्टि जाने की बात छोड़कर भी हमें उसकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। वह मधु और मोम न भी प्रदान करे या डंक से मार कर क्लेश भी देनेवाला ही कीट हो, तब भी उसका उचित श्रेय उसके संघचारी जीवन के कारण प्राप्त होकर ही रहेगा। इसके सङ्घबद्ध गृह की रचना तथा सङ्घीय गृह-व्यवस्था विचित्र बातें हैं।

जब छत्ता पूर्णतः संचालित होता है तो कोष्ठकों में इतनी मधु-मक्खियाँ भरी होती हैं कि उसकी रचना दिखाई ही नहीं पड़ती, किन्तु चित्र में उनका रूप यह मान कर दिया गया है कि वे कहीं चली गई हैं। यह मधुमक्खी के छत्ते के भीतरी भाग का निचला हिस्सा है जो पीछे की ओर शीशा लगा कर दिखाई पड़ता मान लिया गया है। छत्ते भर में केवल मधुमक्खी बैठी दिखाई गई है।

मधुमक्खी के उपनिवेश में रानी अधिष्ठात्री तथा जननी होती है। श्रमिक मधुमक्खियाँ अविकसित मादा होती हैं जिन्हें क्लीव

मधुमक्खी कहते हैं। नर में डंक नहीं होता और वे कुछ काम नहीं करते।

चित्र में रानी मधुमक्खी छत्ते के ऊपर चलती दिखाई गई है। इस स्थिति में वह अपने रूप की विचित्रता प्रदर्शित करती है जिसके कारण वह श्रमिकों से विभिन्न होती है। उन विचित्रताओं को देख कर कुशल पर्यवेक्षक उसे तुरन्त पहचान सकते हैं। रानी मधुमक्खी



मधुमक्खी का छत्ता

में उदर चौड़ाई की तुलना में अधिक लम्बा होता है। बन्द होने पर पंख थोड़ा-सा एक दूसरे पर चढ़े होते हैं। यह बात उसके पहचानने के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। नर मधुमक्खी को बड़े आकार, बड़ी आँखें तथा चौड़े, कुन्द तथा गोल उदर के कारण पहचाना जा सकता है। सामने के भाग में निचले हिस्से की रचना उन कोष्ठकों से हुई है जिनका मुख बन्द है। उनका तथा इस समय तक खाली रहने वाले अन्य कोष्ठकों का आकार षटकोणीय नहीं

है। खाली कोष्ठक ऊपर है। रानी मधुमक्खी उनकी ओर बढ़ रही है।

मधुमक्खी के छत्ते में तीन प्रकार के कोष्ठक होते हैं: श्रमिक कोष्ठक, नर कोष्ठक तथा राजकीय कोष्ठक। इनमें प्रथम दोनों प्रकार के कोष्ठक छपहल या षट्कोणीय होते हैं किन्तु उनमें श्रमिक कोष्ठक छोटा होता है और नर कोष्ठक उससे बड़ा होता है। राजकीय कोष्ठक श्रमिकों तथा नरों के जनन-कोष्ठकों से सर्वथा भिन्न होते हैं और वे सदा छत्ते के किनारों पर स्थित होते हैं। इनमें से एक कोष्ठक चित्र में प्रदर्शित है। वह सामने के छत्ते के किनारे है। एक साधारण कोष्ठक से वह बहुत बड़ा होता है। उसकी रचना बहुत ही प्रचुरता से प्रयुक्त मोमों द्वारा हुई रहती है। अन्य कोष्ठकों की भाँति सीमित मात्रा की मोम ही प्रयुक्त नहीं होती। मध्यवर्ती छत्ते में श्रमिक कोष्ठक तथा नर कोष्ठक के आकारों में भेद प्रदर्शित है। उसमें श्रमिक कोष्ठक नीचे हैं तथा नर कोष्ठक ऊपर हैं।

जो नवजात शिशु राजकीय कक्ष में रक्खा जाता है उसे वही साधारण आहार नहीं दिया जाता जो अन्य मधुमक्खियों को दिया जाता है। उसे बिल्कुल ही भिन्न आहार देकर पोषित किया जाता है। उसमें निस्संदेह ही अधिक पौष्टिक तत्व होते हैं। यह एक ज्ञात तथ्य है कि यदि साधारण नवजात शिशु को, जो साधारण श्रमिक कोष्ठक में ही उत्पन्न हुआ हो, राजकीय कोष्ठक में रख दिया जाय और वही राजकीय आहार दिया जाय तो उसका विकास रानी रूप में होता है। वह कालान्तर में रानी बनने तथा सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ होता है। यह प्राकृतिक व्यवस्था कुछ कठिनाइयों को, जो कभी-कभी आ जाती हैं, उस समय दूर करने के लिए होती है जब रानी मर चुकी होती है और कोई राजकीय इल्ली नहीं होती। मधुमक्खियों के कोष्ठकों का प्रमुख उपयोग शिशु-

पालन तथा आहार-सञ्चय के लिए होता है किन्तु उनका अन्य उपयोग भी होता है। जब कभी मधुमक्खी विश्राम करना चाहती है, वह अवश्य ही एक कोष्ठक में घुस जाती है, उसी में सिर, वक्ष तथा उदर का कुछ भाग भीतर प्रविष्ट कर लेती है। जब मधुमक्खियों को मारने के लिए छत्ते पर गन्धक का धुआँ दिया जाता है तो उससे बचने के लिए मधुमक्खियाँ कोष्ठकों के अन्दर घुस जाने का प्रयत्न करती हैं, परन्तु उसी में मर जाती हैं।

यह एक तथ्य है कि मधुमक्खियाँ मधु को शीततम भाग में रखती है तथा शिशुओं को उष्णतम भाग में पोषित करती हैं। अतएव मधुमक्खियों को पालने वाले उनके छत्ते पर काँच या काठ की टोपी मढ़ देते हैं। ये टोपियाँ छत्ते के भागों से अवश्य ही ठन्डी होती है। इसलिए मधुमक्खियाँ वहाँ मधु का भारी भन्डार रखती हैं।

मधुमक्खी के छत्ते को अन्य कीटों के छत्ते से विशिष्ट प्रकट करने वाली कुछ रचना होती है। इसमें कोष्ठक दुहरी पंक्तियों रूप में स्थित रक्खे होते हैं जिससे कोष्ठकों का मुँह अधोवर्ती हो और आधार तल ऊपर हो। उसके आधार तल या कोष्ठकों की छत पर से शिशुपोषक परिचारिकाएँ ऊपरी पंक्ति के कोष्ठकों का मुँह अपने सामने पाती हैं और शिशुओं को आहार देती जाती हैं।

मधुमक्खी के छत्ते में ऐसा नहीं होता। उसके दोहरी पंक्तियों के कोष्ठकों की रचना इस प्रकार हुई होती है मानों बहुत से अंगुश्ताने (अंगुलित्राण) दुहरे-दुहरे इस प्रकार एक दूसरे पर रक्खे हों कि उनके पेंदे बीच में साथ मिल जायँ किन्तु नीचे वाले अंगुश्तानों का मुख नीचे की ओर हो और ऊपर की पंक्ति के अंगुश्तानों का मुँह ऊपर की ओर हो। ठीक इसी तरह मधुमक्खी के कोष्ठक दुहरी पंक्तियों में व्यवस्थित होते हैं। यदि ऐसी व्यवस्था में इनके आधार

तल अङ्गुश्ताने की तरह बीच में उभड़े हुए या उन्नतोदर हों तो दोनों पंक्तियाँ एक दूसरे से ठीक तरह आबद्ध न हों इसलिए इनके पेंदे चपटे होते हैं। वे तिकोने रूप के ही अपने आधार दूसरी पंक्ति के कोष्ठकों से संयुक्त करते हैं।

झिल्लीपंखीय कीटों को गृह-निर्माण की सामग्री बाह्य स्रोतों से ही प्राप्त होती है। हड्डा और ततैया वृक्षों और शाखाओं पर जाकर काठ के रेशे नोच लाते हैं। वह लुगदी बन कर प्रयुक्त होता है। कुछ कीट पंखुड़ियाँ और पत्तियाँ ही चबा कर लुगदी बनाते और गृह में प्रयुक्त करते हैं किन्तु छत्तेवाली मधुमक्खी एक दूसरे रूप में गृह-निर्माण सामग्री प्रस्तुत करती है। श्रमिक मधुमक्खी के उदर के अधोतल को ध्यान से देखा जाय तो उसमें छः छोटे ढक्कन मिलेंगे। वे छोटी थैलियों के ऊपरी आवरण से होते हैं। उन्हें पिन से ऊपर उठाया जा सकता है। उन्हीं के नीचे मधुमक्खी मोम को निःसृत करती है जो नन्हें छिछड़े रूप में निकलती है। यथेष्ट आहार, शान्ति तथा उष्णता इसके उत्पन्न होने के लिए आवश्यक होती है। यह पहले उष्ण रहने पर इतना नर्म रहती है कि उसे किसी रूप में गूँध कर ढाला जा सके। ठन्डा होने पर वह कड़ा बन जाती है। वह शिशुओं तथा मधु-भन्डार का बोझ सँभाल सकती है। उसमें मधु सिंचित नहीं हो सकती।

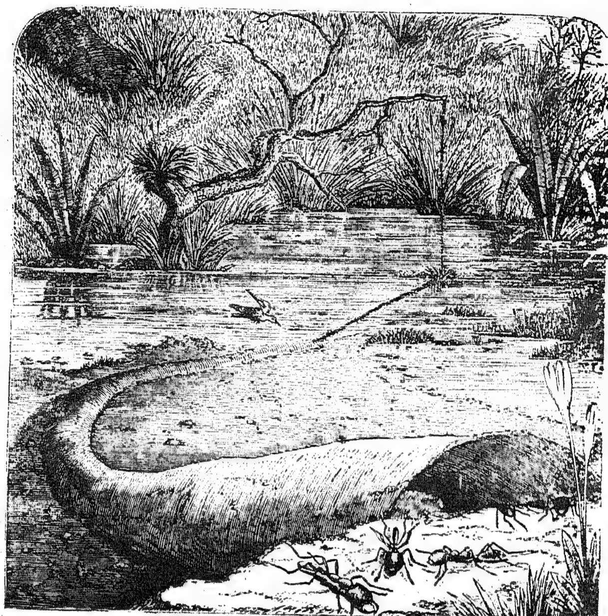
हड्डे का गृह बर्रे की भाँति होता है किन्तु यह अपेक्षाकृत बड़ा होता है और वृक्ष के खोखलों तथा दीवाल के छिद्रों में बना होता हैं। कहा जाता है कि बहुत से हड्डों के डङ्क मारने पर मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है। अपने डङ्क के भय को दिखा कर ही यह अपने गृह की रक्षा करता है। क्लोरोफार्म सुँघा कर इन्हें मूर्छित कर छत्ते को पृथक कर पर्यवेक्षण या पालने के लिए कहीं ले जाना सम्भव होता है।

हड्डे अपने गृह पर आवरण बनाने की व्यवस्था नहीं करते। कहीं वृक्ष-कोटर या ढके स्थल में गृह बने होने की अवस्था में आवरणहीन गृह बनाते हैं, परन्तु ऊपर स्थान खाली रखने का सुभीता किया जाय तो वे बाह्य आवरण बनाने का प्रयत्न कर सकते हैं।

ततैया तो दिन को ही क्रियाशील रहती है और रात को सब गृह के भीतर पहुँच जाती हैं। परन्तु हड्डा रात को भी क्रियाशील रहता है। चाँदनी रात में तो उसे निस्सन्देह क्रियाशील देखा जाता है। इसके गृह में कई द्वार होते हैं जिनसे यह भीतर प्रविष्ट हो सकता है।

संसार के भयंकर जन्तुओं में पश्चिमी अफ्रीका की नियामक पिपीलिका भी कम दुखदायी नहीं हैं। इनके पर नहीं होते। ये जहाँ कहीं पायी जाती हैं वहाँ झुण्ड की झुण्ड होती हैं। इनकी लम्बाई आधे इञ्च के निकट होती है। इनका रङ्ग गहरा भूरा और काला होता है। इनके रङ्ग रूप में विशेष अन्तर नहीं होता, किन्तु इनका आकार भिन्न-भिन्न होता है। कोई छोटी होती है तो कोई बड़ी। अनेक जन्तुओं को अधिकृत कर उनसे मनमाना काम ले लेती हैं; अतएव इन्हें 'नियामक' कहते हैं। कोई ऐसा जीवधारी नहीं है जो इनका सामना करने का साहस कर सके। इनका प्रस्थान करना ही सत्यानाश कर देने वाला होता है। कोई भी जन्तु इनका रास्ता काटने का नाम नहीं लेता। यह सत्यानाशी चींटियाँ चालाक बन्दरों पर भी अपना अद्भुत पराक्रम दिखाती हैं। यदि पिपीलिकाओं का आक्रामक दल किसी बन्दर पर धावा कर दे और उसके शरीर पर चढ़ दौड़े तो उसको जान बचाकर भागना अत्यन्त कठिन हो जाता है और उसे अपनी जान तक से हाथ धोना पड़ता है। किसी शूकर-गृह में इनकी पहुँच हुई तो यह

छौनों का सत्यानाश कर डालती हैं। पक्षियों के निवास स्थान पर



नियामक पिपीलिका

भी इनका हमला हो ही जाया करता है। मुर्गीखानों में इनका पदार्पण होने पर सभी अंडे-बच्चों की बरबादी आ पहुँचती है।

मृत जन्तुओं को खाने का इनका विचित्र ढङ्ग है। एक बार एक डाक्टर ने परीक्षा करने के लिए एक मृत पक्षी को उनके सामने रख दिया। पहले वह चुपचाप रहीं। थोड़ी ही देर में इनको सुगम मार्ग बनाते और गृह द्वार तक के मार्ग के प्रतिबन्धों को दूर करते देखा गया। यह परिश्रमी और साहसी होती हैं। इनका पराक्रम देखकर आश्चर्य होता है। अपने शरीर से तिगुनी, चौगुनी अधिक

लम्बाई की वस्तुओं को मुँह और पैर से बलपूर्वक पकड़कर ढकेलती हुई अपने निवास स्थान तक स्वयं निर्मित मार्ग से सहज ही चली जाती हैं। वह मार्ग कभी-कभी तो २०० गज तक लम्बे होते हैं। जब कुछ चींटियाँ सड़क बनाने लगीं उस समय कुछ मृत पक्षी के पङ्ख उखाड़ने में व्यस्त हो रही थीं। उनमें इतनी शक्ति तो थी नहीं कि एक बार ही बल करने से पङ्ख उखड़ जाते। अतएव वह धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा पङ्ख नोंचती जाती थीं। इसके पश्चात् उन्होंने पक्षी का सम्पूर्ण शरीर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इस प्रकार दुर्द्धर्ष पराक्रम की पिपीलिकाओं को देख बड़ा आश्चर्य हुआ, पर यह उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी।

बड़े-बड़े सर्पादि भी उनके बलि हो जाते हैं। जब कभी सर्पों पर इनका आक्रमण होता है तो पहले उसकी आँखें निकाल लेती हैं, जिससे वह बेचारा इधर-उधर भाग सकने में असमर्थ हो जाता जाता है और एक ही स्थान पर छटपटाने लगता है। बड़े-बड़े अजगर इनसे बहुत डरते हैं। जब किसी अजगर को कोई शिकार मिल जाता है तो वह मीलों तक घूमकर देख लेता है कि कहीं चींटियों का दल तो नहीं आ रहा है। यदि कहीं इनका प्रकोप हुआ और तनिक भी इनके आगमन का पता चला तो वह शिकार को उन्हीं के लिए छोड़कर भाग जाता है। जब नियामक पिपीलिकाए अपना जूठन छोड़कर दूर चली जाती हैं तो अजगर लौटकर वहाँ आता है और बचे-खुचे को निगलकर पाचन समाप्त होने तक वहीं पड़ा रहकर विश्राम किया करता है।

इनका आतंक सभी प्राणियों पर ऐसा छाया रहता है कि इनके पहुँचने पर गाँव का गाँव खाली हो जाता है और जन-समूह किसी जलाशय के बीच में जा छिपता है; क्योंकि जब तक किसी विशेष आपत्ति से बाध्य न हों वे पानी में पैर नहीं रखतीं।

इनका धावा बड़ा बेढंगा होता है। प्रभाकर की प्रखर रश्मि पिपीलिकाओं के लिए प्राणघातक होती हैं, अतएव वह दिन में कहीं पर धावा नहीं बोल सकतीं। जब वर्षा ऋतु में आकाश मेघाच्छन्न हो तभी या भयंकर दशा में ही इनका आक्रमण होता है, सो भी अर्द्ध रात्रि के पश्चात्। यदि कारणवश प्रभात के पूर्व अपने निवास स्थान पर नहीं पहुँच सकीं और मार्ग में ही प्रातः हो गया तो इनके जान पर आ बनती है; किन्तु अपने कौशल से विचित्र व्योमाच्छादन बनाकर अपनी रक्षा करती हैं। उनके मुख से एक प्रकार का रस निकलता है। मिट्टी, धूल के सम्मिश्रण से उसका मसाला सा बनाकर मेहराबदार छत बना लेती हैं। इस काम में अपनी बुद्धिमत्ता का भी परिचय दे देती हैं। यदि कोई उभरा हुआ पोला स्थान वा बढ़ी हुई घास मिली तो उससे पूरी सहायता ले लेती हैं। इससे उनके समय और परिश्रम की बचत हो जाती है। धूप से बचने के लिए इस प्रकार का मेहराब तैयार करती हैं।

यदि वर्षा ऋतु में दिन में कहीं जाना हुआ तो उनमें से बड़ी-बड़ी चीटियाँ एक दूसरे से मिलकर जीती जागती छत तैयार कर लेती हैं। इस प्रकार के अस्थायी मार्ग से अन्य चींटियाँ आनन्द पूर्वक यात्रा करती हैं। जब कहीं किसी प्रकार का खटका हुआ वा कोई दुर्घटना हुई, सब चींटियों को सूचना मिल जाती है और छत की बड़ी-बड़ी चींटियाँ अलग होकर छत तोड़ देती हैं और आगे बढ़कर युद्ध में अग्रसर हो जातीं हैं। युद्ध के उपरान्त शांति स्थापित होने पर वा किसी प्रकार का खटका न रहने पर फिर पूर्ववत मेहराब तैयार हो जाती है। सैनिक शिक्षा में इनकी दक्षता उस समय देखते ही बनती है।

उष्ण कटिबन्ध प्रदेशों में प्रायः वर्षा के कारण आकस्मिक बाढ़ आ जाया करती है और पानी के प्रचंड वेग के प्रवाह में सभी

वस्तुएँ वह चलती हैं। जब कभी पिपीलिकाओं को भी ऐसी विपत्ति से बचना होता है तो वह एक दूसरे से मिलकर गेंद सदृश बन जाती हैं और वह निकलती हैं। जो सबसे अधिक शक्तिसम्पन्न और बड़े आकार की होती हैं वे ही गोले में सबसे बाहर रहती हैं, शेष क्रम से भीतर रहती हैं। जो सबसे निर्बल और छोटी होती हैं वह अन्दर रहती हैं। इस प्रकार की गेंद पानी से बहुत हलकी होती हैं। जब बाढ़ उतर जाती है तो किसी शुष्क भूभाग पर जाकर आश्रय पाती हैं। एक बार एक डाक्टर ने बड़े कौशल से इसी प्रकार का एक गोला रूमाल में पकड़ लिया था। उसमें उन्हें सभी आकार की पिपीलिकाएँ मिलीं।

यदि इस प्रकार का कोई गोला किसी गाँव के निकट गया तो लोग इसे भस्मीभूत करने का प्रयत्न करने लगते हैं। इन पिपीलिकाओं का निवासस्थान बहुत साधारण होता है। कभ-कभी केवल एक बिल रहता है। कब्रों के निकट बिल बनाना इन्हें अधिक पसन्द आता है।

इनका ध्वंस करने के लिए लोग ऊपर से पत्ती डालकर जला देते हैं तो भी पेड़ों पर चढ़कर यह जान बचा लेती हैं और एक दूसरे से मिलकर पेड़ से चिपक जाती हैं। दूर से देखने पर पेड़ बिल्कुल अन्धकारमय जान पड़ता है। ऐसी विकट पिपीलिकाओं से नाक में दम रहता है। यह यह बड़ा उत्पात मचाती हैं। इन्हें मार्ग में कोई रुकावट हो ही नहीं सकती। जब कहीं को जा रही हों और दूसरा कोई मार्ग नहीं हो, सामने नदी की प्रचण्ड धारा अपना विकट रूप दिखलाकर बह रही हो उस समय भी इनका साहस सराहनीय होता है। इनको नदी पार कर लेना कुछ कठिन नहीं होता। नदी के किनारे पर पहले यह एक पेड़ ढूँढ़ती हैं, जिसकी डाल पानी में लटकी होती है। एक चींटी डाल पकड़ कर लटक जाती है। दूसरी

उसको पकड़ लेती है। इसी तरह एक दूसरे को अच्छी तरह से पकड़ कर दूर तक चली जाती हैं। तब सबसे आगे वाली चींटी पानी में कूद पड़ती है। उस प्रकार पिपीलिकाओं की शृंखला बहने लगती है। और दूसरे किनारे पर पहुँचकर अन्त वाली चींटी किसी वस्तु को बलपूर्वक पकड़ लेती है। इस ढंग से पक्का पुल बन जाता है और शेष पिपीलिकाएँ सरलतया नदी को पार कर लेती हैं। फिर पुल बनाने वाली पिपीलिकाएँ भी उस पार पहुँच जाती हैं। पेड़ पर भी इसी प्रकार आसानी से चढ़ जाती हैं। तने से शाखाओं पर चढ़कर पत्तियों तक पहुँचने में बहुत अधिक समय लग जाता है; अतएव पहले थोड़ी सी चीटियाँ डाल पर पहुँचकर एक दूसरे को मजबूती से पकड़कर लटक जाती हैं। इस प्रकार डाल से जमीन तक सीढ़ी सी बन जाती है और बाकी सभी चीटियाँ आसानी से पेड़ पर चढ़ जाती हैं।

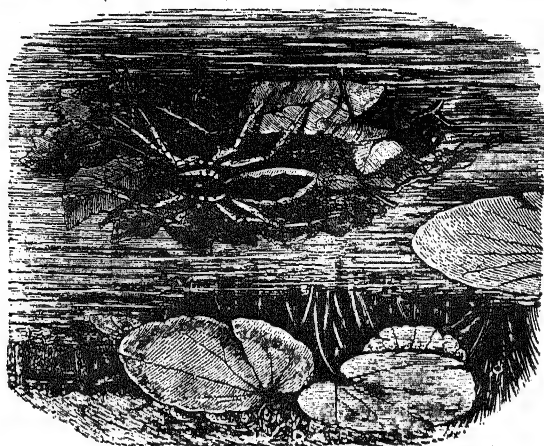
ऐसी पिपीलिकाओं का वर्णन सुनकर आश्चर्य करना व्यर्थ है। ईश्वर की सृष्टि में इस प्रकार की असंख्य विचित्रताएँ भरी पड़ी हैं। केवल चींटियों को ही ले लीजिये। इनमें कितनी ही जातियाँ है। सब में भिन्न-भिन्न विचित्रता है। अन्य जन्तुओं का अनुसन्धान कर सहस्रों आश्चर्यजनक बातें ज्ञात हो चुकी हैं और बराबर नई विचित्रताएँ मिलती जा रही हैं, जिनका उस समय तक अन्त नहीं हो सकता जब तक संसार के साथ हम लोगों का अस्तित्व है।

विविध रूपी गृह-निर्माण

आदिम काल में लट्ठों का बेड़ा बनाकर जलखंड पर गमन करने की बात अनुमानित की जाती है। वह जलखंड पर विजय प्राप्त करने के आरंभिक प्रयत्नों की बात होगी। आज मानव बुद्धि ने तो अपने कौशल का विलक्षण जलयानों की रचना कर प्रदर्शन कर उस आदिम प्रयत्न की बात ही विस्मृत करा दी है परन्तु मनुष्य के अतिरिक्त भी स्थलगामी जीव-जगत जलखंड में अपनी पहुँच करने का कुछ कृत्रिम विधान सोच सकता था, यह हम लोगों के मस्तिष्क में धसने वाली बात नहीं ज्ञात होती। जो जल-जीवन की वृत्ति धारण कर ही सृष्टि के विधान में स्थान प्राप्त कर सके हैं, उनका तो जल में प्रवेश होने का प्राकृतिक प्रबन्ध ही होगा, परन्तु स्थल-जीवन के लिए उत्पन्न जीवों की कोई जल-प्रवेश की व्यवस्था कृत्रिम या निजी ही हो सकती है। ऐसा उदाहरण एक मकड़ा रखता है जो अपने उद्योग से बेड़े बनाकर जल-तल पर विहार करता हैं। इसका नाम ही बेड़ा-निर्मायक मकड़ा है।

एक मकड़ा जल-जीवी ही होता है। वह पानी के अन्दर सहज प्रवेश करता तथा उसी के अन्दर संतानोत्पादन के लिए घोंसला भी बना लेता है। उसे जल-मकड़ा ही कहेंगे। किन्तु बेड़ा-निर्मायक मकड़ा तो जलखंड के ऊपर अपना जंगम डेरा ही डालता है। बेड़े का स्वयं निर्माण कर उसे भाग्य के थपेड़ों से किसी भी दिशा में प्रवाहित रहने देकर उसके साथ ही स्वयं भी विचरण करता रहता है।

बेड़ा-निर्मायक मकड़े का आकार बड़ा होता है। इसकी धड़ यथेष्ट बड़ी होती है। पैर वैसे लम्बोतरे नहीं होते। इसका रूप बड़ा सुन्दर होता है। शरीर का मुख्य रंग भूरा होता है, परन्तु एक नारंगी रंग की चौड़ी किनारी उसके उदर तथा वक्षस्थल पर उनकी रूप-



बेड़ा-निर्मायक मकड़ा

रेखा प्रदर्शित-सी करती रहती है। उदर के ऊपरी तल पर श्वेत विन्दुओं की दुहरी पंक्ति होती है तथा छोटे-छोटे गहरे रंग की आड़ी पट्टियाँ रंग में वृद्धि करती हैं। पैर धूमिल लाल होते हैं।

यह मकड़ा उन जातियों के मकड़ों में से है ो जाला तान कर शिकार नहीं करते। यह तो हिंसक पशुओं की तरह शिकार को दौड़ कर पकड़ता है। भेड़िया मकड़ा नामक बड़ी जाति के शिकारी मकड़े का ही निकटवर्ती इसे कह सकते हैं।

बेड़ा-निर्मायक मकड़ा केवल अर्द्ध-जलमग्न स्थलों में ही रहता है। यह भूमि पर ही शिकार का पीछा करने से संतोष न कर जलखंड

में भी पीछा कर उनके पकड़ने की आकांक्षा रखता है। जल-तल पर यह सुविधापूर्वक दौड़ सकता है किन्तु यह जलखंड के ऊपर विश्राम कर सकने की भी व्यवस्था रखता है। कुछ सूखी पत्तियाँ तथा इसी तरह के अन्य पदार्थ एकत्र कर एक मामूली गेंदे रूप में बना लेता है। उन पदार्थों को अपने रेशमी धागे (जाले) से परस्पर आबद्ध कर लिए होता है। इसी गेंद पर बैठकर हवा द्वारा किसी ओर प्रवाहित होकर जाता है। इस कृत्रिम जलयान या बेड़े को इच्छानुसार दिशा में नियंत्रण कर चलाने का कोई विधान उसे ज्ञात नहीं जान पड़ता।

शिकार की कमी नहीं होती क्योंकि जलजीवी कीट निरन्तर ऊपरी तल पर श्वास लेने आते रहते हैं। वे एक दो सेकन्ड ही जल-तल पर रह सकते हैं, फिर भी उनके जल के भीतर जा सकने के पूर्व ही मकड़ा उन्हें पकड़ सकता है। कुछ ऐसे भी कीट हैं जो जल-तल पर से उड़कर ऊपर जाते हैं, परन्तु जल पर से उठने के लिए उड़ने की शक्ति संचित करने के पूर्व ही मकड़ा उन्हें पकड़ सकता है। कुछ ऐसे भी कीट हैं जो निरन्तर जलखंड में अन्य कीटों का शिकार करने पहुँचते हैं, परन्तु उल्टे वे ही इस प्रबल हिंसक मकड़े का शिकार बन जाते हैं। इतना ही नहीं, पतिंगे, मक्खियाँ भुनगे या अन्य कीट पानी में निरन्तर गिरते रहते हैं और वे बेड़ा-निर्मायक मकड़े का अत्यन्त सहज शिकार बनते हैं। वे उड़ भागने का निरर्थक प्रयत्न करते ही रहते हैं कि यह मकड़ा उन पर टूट पड़ता है और पकड़ लेता है। उन्हें अपने बेड़े पर लाकर आनन्द-पूर्वक भक्षण करता है।

बेड़ा-निर्मायक मकड़ा केवल अपने बेड़े के ऊपर बैठा ही नहीं रहता और वहाँ पहुँच में दिखाई पड़ने वाले कीटों का ही शिकार नहीं करता रहता, बल्कि जब कभी कोई कीट जल-तल पर देख

लेता है तो वह बेड़ा तुरन्त छोड़ देता है और शिकार का पीछा करने जल-तल पर दौड़ जाता है और उस शिकार को पकड़ कर अपने बेड़े के ऊपर लाता है। यह पानी के अन्दर भी उतर सकता है और कई इंच गहराई तक चला जा सकता है किन्तु यह डुबकी लगाने की क्रिया नहीं होती, वह किसी जलीय वनस्पति के अवलम्ब से ही उसके तने के मार्ग नीचे पहुँचता है। जल-तल के नीचे कुछ समय तक रह सकने की इसकी क्षमता प्राण-रक्षा में भी सहायक होती है। जब यह कोई शत्रु आता देखता है तो धीरे से अपने बेड़े के नीचे पानी में उस समय तक छिपा रहता है जब तक वह शत्रु दूर नहीं चला जाता।

एल्क या मूज नामक मृग शीत देशों का जन्तु है। यह अपने शत्रु-जन्तुओं का सामना होने पर अपने अंगों के प्रहार से अपनी रक्षा कर सकने की सामर्थ्य भी रखता है, परन्तु कुछ विशेष ऋतु की विषम परिस्थितियों में उसे अपने अंगों के प्रहार करने की सुविधा नहीं होती, अतएव वह अपनी मंडली की रक्षा करने के के लिए मीलों लम्बे-चौड़े बाड़ा-सा बना रखने की व्यवस्था रखता है। उसे एल्क-बाड़ा कहते हैं।

एल्क अमेरिका तथा योरप के उत्तरी खंडों में रहता है। यह कठोर शीत सहन करने की क्षमता रखता है। यह विशालकाय तथा शक्तिशाली जन्तु होता है। कंधे के निकट इसकी ऊँचाई सात फुट तक होती है। यह ऊँचाई तो लगभग हाथी के बराबर ही होती है। मानव शिकारियों के अतिरिक्त शत्रु जन्तुओं की भी यह कमी नहीं पाता। ग्रीष्मकाल में तो यह अपेक्षाकृत सुरक्षित रहता है किन्तु शीतऋतु में इस पर कई विपत्तियाँ आ सकती है।

एल्क के निवास-क्षेत्रों में इतना अधिक हिमपात होता है कि अधिक शीतोष्ण भूभागों के निवासी उस वातावरण की कल्पना

भी नहीं कर सकते। कुछ समय में ही भूपृष्ठ का पूर्णत: कायापलट हो जाता है। भलीभाँति ज्ञात गर्त्त तथा आखात भी हिमपूर्ण होकर लुप्त हो जाते हैं। चौरस भूमि की जगह बर्फ की तह के ऊपर तहें जमती जाने से ऊँचे टीलों का रूप बन गया होता है। वेगपूर्ण आँधी के कारण बीच-बीच में बर्फ कट कर बर्फ की दीवालों का-सा रूप धारण करा दिये होती है जिससे वह सब हिमराशि मानव रचित गढ़ी-सा बन गई होती है। यदि तीव्र हिमपात हो चुका हो तब तो एल्क को कम ही विपत्ति पड़ सकती है। वह दृढ़ जमी हुई हिम-राशि के तल पर यथेष्ट वेग से चल सकता है। इसकी चाल ऐसी होती है और भूतल पर पैर ऐसे धीमे पड़ते हैं तथा पैर ऐसे लम्बे होते हैं कि यह बाधाओं को सुगमतया पार कर सकता है जिसे घोड़े कूद कर नहीं पार कर सकते। हिम का जमा तल चलने में पैर का बल सँभाल तो सकता है किन्तु घोड़े की कुदान में टाप की मार सँभालना असंभव होता है। एक एल्क तो भूमि पर गिरे हुए अनेक वृक्षों के तनों के मध्य चल सकता देखा गया था। उन तनों में कुछ का व्यास पाँच फुट तक था।

एल्क के खुर फटे हुए होते हैं, जब भूमि पर पड़ते हैं तो वे चौड़े होकर भूस्पर्श करते हैं। पैर उठाने पर वे फिर एक तीव्र शब्द कर एकत्र हो जाते हैं। इसका यह परिणाम होता है कि एल्क की चाल शब्दपूर्ण होती है। खुरों की करकराहट उनके बार-बार उठने पर सुनाई पड़ती है।

एल्क को भोजन का भी कष्ट होता है किन्तु अंतर्वृत्ति के प्रभाव से वह ऊपरी तल की बर्फ हटाकर नीचे दबी लिचेन वनस्पति खाकर पेट भर सकता है किन्तु शीतप्रधान देशों में हिंसक जन्तुओं को भी भूख की ताड़ना सताती है। वे कुछ मार्ग नहीं पाते। इस-

लिए एल्क पर उनकी तीव्र दृष्टि पड़ती है और उसका बध कर आहार करते हैं।

जब तक हिमपात होता रहता है तब तक एल्क अपने शत्रुओं की चिन्ता नहीं करता। यदि वे इसका पीछा करें तो यह भलीभाँति भाग निकलता है या कहीं भागने का स्थान न हो तो उनका सामना भी कर सकता है। हिंसक जन्तु एल्क सरीखे जन्तु पर आक्रमण करना नहीं चाहते जिसकी त्वचा इतनी मोटी हो कि सुखा कर कमाये जाने पर किसी साधारण पिस्तौल की गोली भी विद्ध न होने दें। इसके अतिरिक्त उसमें अगले पैरों से वेगपूर्ण प्रहार करने का भी अभ्यास होता है। शत्रु को नीचे गिरा देता है तथा पदमर्दित कर निष्प्राण कर देता है।

किन्तु जब शीत की न्यूनता होने लगती है, हिमतल टूटने लगते हैं, वह समय एल्क के लिए भयावह होता है। हिमतल पर सूर्य की किरणों के पड़ने से जमा हुआ तल आंशिक रूप में ही पिघलना प्रारम्भ करता है। यह पानी नीचे की बर्फ से मिलकर उसे ऊपरी तल से नीचे धँस जाने का अवसर देता है। इस तरह बीच-बीच में गड्ढे बन जाते हैं किन्तु इस समय भी जमा हुआ तल अपेक्षाकृत हल्के शरीर के भेड़िये समान हिंसक जन्तुओं या मनुष्य के सुगमतया चल-फिर सकने योग्य होता है किन्तु एल्क के चलने पर उसके भारी शरीर के कारण धसने लगता है। अब इस परिस्थिति में भेड़ियों की बन आती है। वे एल्क का पीछा कर सकते हैं। यदि उसे कहीं विकट स्थल में पहुँचा दें तो उसकी मृत्यु सहज ही हो सकती है।

एल्क को संकटपूर्ण वातावरण में डाल कर भेड़िये प्रबल सींगों की भी चिन्ता नहीं करते। सीधे उसकी गर्दन पर ही कूद जाते हैं। उस समय एल्क के अगले पैर प्रयुक्त नहीं हो सकते। हिंसकों की संख्या भी अधिक होती है, इस कारण एल्क मारा जाता है। मनुष्य

भी बर्फ पर चल सकने वाले जूते पहन कर एल्क की विवशता से लाभ उठाता है। अतएव इस समय बर्फ के बीच कहीं भी खुले स्थान में रहने पर अनेक का शिकार बन सकता है। उनसे रक्षा के लिए वह एल्क बाड़ा बनाता है।

एल्क-बाड़ा शीतकाल का निवास स्थान है। यह एक बड़ा भूखंड होता है जहाँ से बर्फ को पैरों तले रौंद-रौंदकर एल्क कठोर भूपृष्ठ बना लेता है जिस पर सहज ही चल भी सके और वह एक रक्षित गढ़ी का भी काम दे। यह सारा भूखंड एक समान ही सपाट नहीं बना लिया गया होता। उसमें जहाँ-तहाँ बर्फ रौंदकर सुविधा-जनक मार्ग से बना लिए जाते हैं जिनमें होकर एल्क आ-जा सके। इस रक्षास्थल का एल्क को इतना भरोसा होता है कि शीतऋतु में वह इसके बाहर कभी नहीं जाता।

इस वृत्ति के कारण भेड़िया एल्कों को अपने प्रहारक्षेत्र से बाहर पाता है। वह बाहर से ही गुर्राता रहता है, परन्तु बर्फ रौंदे हुए भूपृष्ठ के इस गड्ढे में उतरने का साहस नहीं सकता। वहाँ तो एल्क अपने पैरों से प्रबल प्रहार कर सकने योग्य फैली सपाट भूमि बनाये पड़ा होता है। चक्रव्यूह की तरह वह पैंतरे बदल कर स्थान परिवर्तन भी कर सकता है। उसके लिए उसके बनाये मार्ग सहायक होते हैं।

एक भारी विपत्ति से एल्क छुट्टी नहीं पा सकता। वह अपने बाड़े में से बाहर इसलिए नहीं जाता कि हिंसक शत्रु उसके भीतर जाने का साहस नहीं कर सकते परन्तु मनुष्य अपनी राइफलें, बन्दूकें लेकर जब उन बाड़ों के निकट पहुँचता है तो सहज ही उसका संहार कर सकता है क्योंकि वह जानता है कि वे अपने बाड़ों के ही अन्दर रक्षित रहने की भावना से पड़े रहने की वृत्ति रखते हैं। जो विधि उन्हें हिंसक जन्तुओं से रक्षित करती है, वही मनुष्य के

गोली-बन्दूक सज्जित होने पर उनका विनाश करने का कारण होती है।

केवल एल्क ही ऐसे जानवर नहीं हैं जो ऐसे विचित्र बाड़े बनाते हैं। वैपिटी मृगों का दल भी ऐसे बाड़े बनाने के लिए संयुक्त प्रयत्न कर सकता है। एक ऐसा बाड़ा तो चार-पाँच मील तक व्यास के फैलाव में पाया जा सका है। बिना पदमर्दित हुए बर्फ की तह इतनी मोटी होती है कि जब मृग बाड़ों के अन्दर बने मार्गों से जाते हैं तो उनकी पीठ बर्फ के तल से ऊपर नहीं दिखाई पड़ सकती। इतना विशाल आकार होने पर भी यह दूर से कुछ भी नहीं जान पड़ता। कोई नया आदमी तो चौथाई मील दूरी से ठीक उस स्थान पर दृष्टि डालने पर भी कुछ भी नहीं समझ सकता। यह आधुनिक ढङ्ग की छद्मय दुर्ग-रचना सी ही वस्तु कही जा सकती है।

अबाबील पक्षी (भांडीक) समुद्र के तटों पर चट्टानी कगारों में अपना जो घोंसला बनाते हैं, वह एक ऐसे पदार्थ का होता है जो कागज की तरह सपाट तल की परत प्रदर्शित करता है, किन्तु वह कागज न होकर झिल्ली-निर्मित (जिलेटिन) पदार्थ होता है। यह कोई कोमल अस्थि तथा अस्थियों में रहनेवाला पदार्थ पानी से ग्रहण करती है जो द्रव रूप में रहने पर भी सूखने पर झिल्ली बन जाता है। कदाचित शैवालों, समुद्री वनस्पतियों, मछलियों के नव-जात शिशुओं अथवा प्रकवचीय कोमलांगी जन्तुओं के अन्डे से इस जिलेटिन को प्राप्त करता है। वे यह पदार्थ किसी खड़ी दीवाल या कगारे पर ले जाते हैं और उससे एक चाप (परिधि का कोई खंड) या मेहराब रूप की रचना करते हैं। एक बार लेपा पदार्थ सूख जाने पर उसके ऊपर नया जिलेटिन लेप कर सूखने देते हैं। धीरे-धीरे यह प्याला या डलिया रूप की वस्तु हो जाती है। उसमें

वह अन्डा देती है। अबाबीलों के इन नीड़ों को चीन की कुछ ज़ातियाँ सुस्वादु खाद्य पदार्थ-सा समझती और प्रयुक्त करती हैं।



अबाबील का खाद्य घोंसला

इस कारण इसे खाद्य नीड़ी भांडीक कह सकते हैं। संक्षेप में इसे 'खाद्य भांडीक' (एडिबुल स्वालो) कह देते हैं। इसके घोंसलों का शोरवा या काढ़ा ही सुस्वादु कहा जाता है। प्रारम्भ में नए बने हुए घोंसले श्वेत और कोमल होते हैं। उसी अवस्था में वे मूल्यवान या

सुस्वादु कहे जाते हैं। चीन में वे बहुत अधिक दामों पर बिकते थे किन्तु पुराने होने पर उनका रङ्ग गाढ़ा हो जाता है। वे स्वच्छ किए जाने तथा धोए बिना खाद्य रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकते।

ये घोंसले बोर्नियो, जावा आदि में पाए जाते हैं। ये स्थानीय ही हैं, कुछ विशेष स्थानों में ही पाए जाते हैं। यह पक्षी गर्त्तों के खड़े तथा गुफाओं युक्त ऊँचे पहाड़ी कगारों को चुनता है जिसकी दीवालों के साथ अपने घोंसले बनाता है। अतएव उन्हें प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है। वे खड़ी चट्टानों के कगारों में इसी प्रकार बने होते हैं जैसे साधारण अबाबील के मिट्टी द्वारा बने घोंसले दीवालों में बने होते हैं। वे आड़ी पंक्तियों रूप में स्थित होते हैं। इन घोंसलों का रूप इतना पारदर्शी होता है कि यदि छपे हुए कागज पर रख कर ऊपर से प्रकाश पहुँचाया जाय तो बड़े अक्षर उनके नीचे से पढ़े जा सकते हैं। भीतरी भाग पर दृष्टि डालने से इनकी रचना स्पष्ट ज्ञात हो सकती है। ये अगणित झिल्लीय सूत्रों से बने होते हैं जो अव्यवस्थित रूप में खड़े और आड़े रूप में परस्पर उलझा कर मोटी दीवाल रूप में बने होते हैं। वह रचना ही खुली हवा में सूख कर गठित रूप की हो जाती है। कदाचित ऐसे एक घोंसले की रचना में अबाबील को दो मास लगाने पड़ते हैं। चीनी लोगों का विश्वास था कि इस घोंसले को उबाल कर बनाए क्वाथ से पुनरुज्जीवन प्राप्त किया जा सकता है। इसी अन्धविश्वास के कारण ही इसकी ऊँचे दामों पर बिक्री हो जाया करती थी। परन्तु यह धनिकों के चोंचले थे। जनसाधारण को तो इतनी दुर्लभ वस्तु प्राप्त भी नहीं हो सकती थी।

लम्बपुच्छ मूषक नर्म रोओं का चूहा होता है। उसका शरीर बादामी रङ्ग का होता है। अधोभाग श्वेत होता है। यह वृक्षचारी होता है और जङ्गलों में रहता है। इसके अगले पैरों में पहली और

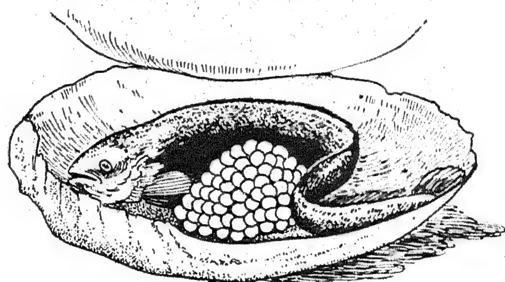
पाँचवी उँगलियाँ विरुद्ध दिशा में हमारे अँगूठे की तरह मुड़ सकने वाली होती हैं। उनमें चंगुल के स्थान पर चपटे नख होते हैं। यह भारत भर में पाया जाता है। वृक्षों, झाड़ियों में यह चूहा पाया



वृक्षचारी चूहे का घोंसला

जाता है। इसका शरीर २-३½ इञ्च लम्बा होता है उसमें ३-४½ इञ्च लम्बी पूँछ भी होती है।

यह चूहा वृक्षों, झाड़ियों आदि पर रहकर फल, झरबेरियाँ, कलियाँ और कोंपल खाता रहता है। डालों पर चलने या वृक्ष पर चढ़ने के लिए अपनी लम्बी पूँछ से सहायता लेता है। धरातल पर चलने में कठिनाई होती है। सन्तान-उत्पादन करने के समय इस चूहे की मादा एक बड़ा घोंसला बनाती है जिसमें शिशु उत्पन्न और पोषित हो सकें। घोंसले में उन्हीं वस्तुओं का उपयोग करता है जो उसके रहने के वातावरण में सुलभ होते हैं। बाँस के जङ्गलों में बाँस की सूखी पत्तियों को प्रयुक्त करता है। घास की चौड़ी पत्तियों से भी घोंसले बना सकता है। प्रायः वृक्ष के कोटर या किसी खोखले में इसका घोंसला हो सकता है। डालियों में भी बना सकता है। फूस के छप्परों में भी इसका घोंसला कभी-कभी बना मिलता है। एक चूहा तो अबाबील के बनाये मिट्टी के घोंसले में ही अपने शिशु उत्पन्न करता देखा गया था। वह घोंसला किसी चट्टान के नीचे था। एक संघचर मकड़े के घोंसले में भी एक चूहे को संतानोत्पादन करते पाया गया। मकड़ों के साथ ही चूहा भी आनन्द से रहता



बटरफिश का सीप में शिशु-गृह

था। गेहूँ की बालियों के सन्निकट खेतों में भी चूहे के बनाये वर्तुलाकार घोंसले कहीं पर देखने को मिलते हैं। पौधों के सहायता

से ही वह गोल घोंसला बना लेता है। सन्तानोत्पादन वाले घोंसले में केवल मादा और उसके तीन से छः तक शिशुओं का निवास होता है। नर चूहों के भद्दे घोंसले अलग ही बने होते हैं, उन्हें विश्रामस्थल कहा जा सकता है।

कुछ मछलियाँ पत्थर के ढोंकों की ओट में अंडों को रखने का प्रबन्ध करती हैं। उनमें कुछ पत्थर के दरारों या खाली सीप में भी अंडा रखती हैं। बटरफिश खाली सीप के खुले तल पर ही अंडे देती है और उसके निकट रहकर उन्हें सेती है।

पैरागुए वुल्लुमकुक्क मेढक भारत की दर्जी चिड़िया का अनु-



पत्ता मोड़कर बनाया मेढक का घोंसला

करण कर जलखंड के निकट के किसी पौधे की पत्ती मोड़कर जोड़

लेता है और घोंसला बनाता है। उसी में वह अपने अंडे देता है। अंडों से शिशु उत्पन्न होकर जलखंड में पहुँच जाते हैं।

सामाजिक प्राणियों में बीवर का सर्वोच्च स्थान है। यह अन्य जन्तुओं की भाँति केवल एक साथ मिल जुल कर रहना ही नहीं जानते, बल्कि अपनी जाति मात्र का कल्याण करने वाले कामों को भी संयुक्त होकर करने में उत्साह दिखलाते हैं। यह बात अन्य प्राणियों में बहुत कम पाई जाती है। बीवर को पानी से बहुत अधिक प्रेम है। भूमि पर भ्रमण करने से पानी में तैरना इन्हें अधिक पसन्द है। यही कारण है कि सदा जल से भरी नदियों के तट पर इनका निवास-स्थान होता है। यदि किसी कारण वश जलकष्ट की संभावना हो तो बीवर साधारण जन्तु होने पर भी बल-पूर्वक सरिता को अपनी जल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बाध्य करते हैं। जिस प्रकार आजकल पनचक्की के स्वामी बाँध द्वारा जल एकत्रित कर अपना मतलब सिद्ध करते हैं उसी ढङ्ग से बीवर भी मोटे-मोटे पेड़ के तनों और शाखादि के विकट बाँध द्वारा जल-प्रवाह रोककर जलराशि जुटा लेते हैं। इस प्रकार कभी-कभी अनेक स्थानों पर मीलों तक पचासों बाँध तैयार हो जाने से खेतों को बड़ा लाभ पहुँचता है। यदि इस प्रकार के बाँध मनुष्य द्वारा तैयार किये जाते तो सहस्रों, लक्षों मुद्रा पर सहज ही पानी फिर जाता। इस प्रकार से जलावरोध द्वारा जितना लाभ पनचक्की वालों को होता है उतना ही बीवरों को भी होता है; किन्तु जिस समय मनुष्य ने बाँध तैयार करना नहीं सीखा था वा उसे चक्की चलाने तक का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था उस समय भी बीवर बांध-बाँध लेने में कुशल थे और ऐसे जलावरोध से जल-राशि एकत्रित कर आनन्द लूटते थे। लोगों को इतना तो पहले ही ज्ञात हो चुका था कि बीवर जलावरोध तैयार कर लेते हैं, किन्तु इस बात का पता लगाना कठिन था कि बाँध में

किस प्रकार किन वस्तुओं का प्रयोग कर उसे सुदृढ़ करते हैं। बीवर बाँध तैयार करने में प्रायः पेड़ के तनों, शाखाओं और झाड़-झंखाड़ आदि की सहायता लेते हैं। बड़े-बड़े पेड़ों को अपने तेज दाँतों से काटकर गिरा देते हैं, कभी-कभी एक-एक गज मोटे वृक्षों को इतनी सुगमता से काट डालते हैं जैसे लकड़हारा कुल्हाड़े की सहायता से काटता है। इन पेड़ों का कुछ अंश तो बाँध में लग जाता है, अवशिष्ट भोजन के काम में आता है। गर्मी के दिनों में पेड़ की जड़, झरबेरी और पत्तियों पर निर्वाह करते हैं। किन्तु जाड़े के दिनों में पूर्व संचित पेड़ की छालों से ही काम चल जाता है, शेष तने बड़े कौशल से जल में छोड़े जाते हैं। वह छोटी-छोटी टहनियों के साथ बाँध तैयार करते हैं। मोटी लकड़ियों का चौकोर सुन्दर आकार देखकर यही जान पड़ता है कि वे मनुष्य निर्मित हैं।

जब बीवर किसी पेड़ को अपने कार्य के उपयुक्त समझते हैं, तो उसके तने में चारों ओर एक खोखला बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। धीरे-धीरे उसी को बढ़ा लेते हैं। चारों ओर खोखला काट लेने के बाद पेड़ को बड़े ध्यान से चारों ओर से देखते हैं, मानों गणित द्वारा पेड़ का झुकाव देख रहे हों। जब एक ओर से पेड़ के गिरने का निश्चय हो जाता है तो दूसरी ओर जाकर दो ही तीन बार में बड़ा सा खोखला बना लेते हैं जिसके कारण पेड़ का एक ओर का बल बहुत कम हो जाता है और धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

पेड़ के गिर जाने पर उनके तनों को कई टुकड़ों में कर डालना भी बीवरों के लिए कुछ कठिन नहीं होता। उसके एक-एक गज के अनेक टुकड़े कर डालते हैं। कटे हुए टुकड़े बिल्कुल गोल और नोकीले होते हैं। इस प्रकार के टुकड़े कई एक स्थानों पर रखे रहते हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। इन्हीं टुकड़ों से बाँध बनता है। जब एक ओर कुछ विद्वान बीवर को अत्यंत विकट और चतुर जन्तु

सिद्ध कर इसके बल की प्रशंसा करते दिखाई पड़ते हैं तो कुछ सज्जन ऐसे भी मिलते हैं जो सब कुछ धो डालते हैं और इसकी सत्यता अस्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि वे बाँध बीवर के बनाये नहीं होते बल्कि धारा द्वारा प्रवाहित लट्ठों के जुट जाने से आप से आप बन जाते हैं, जहाँ बीवर पीछे अड्डा जमाकर सब छाल को स्वाहा कर डालते हैं किन्तु यह भ्रम निराधार है।

बाँध बाँधने के लिए लट्ठों को जमीन में घुसाते नहीं हैं बल्कि कंकड़ पत्थर से ढककर योंहीं पानी के अन्दर डुबाकर रखते हैं। इसी प्रकार बहुत से लट्ठे एक के ऊपर एक रख दिये जाने से बाँध तैयार हो जाता है। इनकी काम करने की शक्ति बड़ी तीव्र और आश्चर्यजनक होती है। इनका कौशल निपुण इञ्जीनियरों से बढ़ा-चढ़ा होता है।

बीवर की गिनती जलचरों में की जा सकती है; जहाँ कहीं इसे जल-यात्रा का अवसर मिलेगा स्थल मार्ग से दूर ही रहेगा। सूखी जमीन पर आने से पानी के अन्दर पड़ा रहना इसे आनन्द-दायक प्रतीत होता है। इसी कारण जहाँ तक सम्भव होता है इनका निवास स्थान पानी के बिलकुल निकट होता है। उसमें दो मार्ग होते हैं एक तो पृथ्वी के ऊपर होता है और दूसरा पानी के अन्दर जाता है। इस कारण वहाँ से पानी में आना-जाना सुगम होता है, इनके रहने के कमरे वृत्ताकार होते हैं, जो प्रायः ३ फुट ऊँचे और ६-७ फुट व्यास के होते हैं। 'इसके बाहर की दीवाल पेड़ की डालों और कीचड़ के संयोग से बहुत मोटी होती है। जाड़े के दिनों में जब बर्फ जमने लगती है, दीवाल पत्थर की भाँति कठोर हो जाती है। एक-एक भींटे में अनेक बीवरों का निवास होता है।

